

**THE BOOK WAS
DRENCHED**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182127

UNIVERSAL
LIBRARY

Osmania University Library

Call No

H83

Accession No. H1674

Author

W35D

नाजपति कामरा नाता

Title

देवयानी

This book should be returned on or before the date last marked below.

देवयानी

कुमारी तारा वाजपेयी

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

१९४५

मूल्य १)

सर्वोदय साहित्य मन्दिर
हुसैनीअलम रोड, हैदराबाद (दार्जिलिंग)

Printed and Published by K. Mittra, at The Indian Press, Ltd.
Allahabad.

भूमिका

कु० तारा वाजपेयी द्वारा प्रस्तुत महाभारतान्तर्गत कच और देवयानी 'सद्ध उपाख्यान का' नाटकीकरण एक विशेष दृष्टिकोण से विचारणीय देवयानी के चरित्र को महत्त्व देकर कुमारीजी ने उसको प्रस्तुत की नायिका का स्थान दिया है। देवयानी का चरित्र महाभारत ने वर्णित उपाख्यान-रत्नों का एक बहुमूल्य माणिक्य है जिसकी उज्ज्वलता युगों के अन्धकार को वेधकर हम तक पहुँच रही है। वास्तव में वह एक आदर्श ऋषि-कन्या थी और कुमारीजी ने भी कन्यात्व का आदर्श उपस्थित करने में इस भाव को बड़ी सफलता के साथ अङ्कित किया है।

महाभारत के मतानुसार कच और देवयानी की घटना आर्य-सभ्यता के जिस उषःकाल में घटित हुई थी उस समय भी आर्यावर्त में वर्णाश्रम धर्म एक दुर्भेद्य दुर्ग था अथवा यों कहें कि कन्या का सम वर्ण अथवा उच्च वर्ण में विवाह होना आर्य सभ्यता का एक अनिवार्य नियम था। अतः देवयानी और ययाति का वैवाहिक सम्बन्ध आर्यों के उस व्यापक सामाजिक नियम का एकमात्र अपवाद है। कुमारीजी ने इस अपवाद का स्पष्टीकरण बहुत ही सतर्कता से किया है। वर्तमान भावनाओं को कुचलकर प्रारम्भिक मानव-भावनाओं को अङ्कित करने में कुमारीजी को जिस कठिनाई को पार करना पड़ा है उसका एक सुलभ हुआ स्वरूप प्रस्तुत नाटक के कथोपकथन में बड़ी ही सावधानी से अङ्कित किया गया है।

देवयानी का चरित्र आधुनिक स्त्री-मनोविज्ञान के परे है। अज्ञकल स्त्री सपत्नीत्व का भार सह ही नहीं सकती तथा प्राचीन काल में भी किसी

उल्लेखनीय स्त्री-चरित्र ने सहन किया हो, इसका पता भी नहीं है देवयानी कारणवश एक प्रस्ताव करती है; कच अस्वीकार करता है एक ब्राह्मण बालक के उपल-सदृश कठोर चरित्र से टक्कर लेकर उसका मस्तिष्क चक्कर खा जाता है। वह कच को शाप भी दे डालती है पुनः उसे एक क्षत्रिय ययाति से पाणिग्रहण करना पड़ता है। ऐसा हूँ जाने के उपरान्त वह अपनी पोष्य-सखी शर्मिष्ठा को अपनी सपत्नी सहपत्नी स्वीकार करके, एक साधारण स्त्री न रहकर, एक आदर्श स्त्री हो जाती है क्या ऐसी स्त्री के हृदय में कच के प्रति वासना थी? कदापि नहीं कच के साथ वैवाहिक प्रस्ताव करके देवयानी एक आदर्श उपस्थित कर रही थी। देवयानी का चरित्र एक भावुक हृदय को आकर्षित करने लगता है। देवयानी का चरित्र तो महान् है ही, प्रश्न यह है कि उसे कुमारीजी ने अङ्कित कैसे किया है। आदर्श-चरित्र का किञ्चित्मात्र भी स्वलन आँख की किरकरी हो जाता है। ऐसे निष्कलङ्क-चरित्रों के चित्रण में यदि अनवद्य भाव और अवदात भाषा का प्रयोग न किया गया तो थोड़ा दोष भी बहुत हो जाता है। कहना न होगा कि ऐसी कोई कुमारी जी के चित्रण में नहीं पाई जाती।

आधुनिक नाटककार पौरुषेय कथानकों में पौरुषेय पात्रों को कभी कभी स्थान दे डालते हैं। इसको वे Supernatural Element के नाम से पुकारते हैं। मेरी समझ से वह प्रश्न इस नाटक में उपस्थित नहीं होता। दैत्यादैत्य-संग्राम के उद्घाटन में ऐसा प्रश्न अव्यवहार्य है, क्योंकि वहाँ तो वे अपौरुषेयत्व स्पष्ट कार्य करते हैं। Supernatural Element का यह अर्थ भी नहीं है। अँगरेज़ी के प्रसिद्ध नाटककार Shakespear ने इस यथा-कथित 'अपौरुषेयत्व' का प्रयोग भूतात्माओं के आवाहन के एवं तन्त्र-मन्त्र प्रयोग की विधियों के साथ किया है। सांसारिक एवं असांसारिक संघर्षों में उस कोण से देखना समीचीन न होगा। देवासुर-संग्राम के पात्र—चाहे वे देव हों अथवा दानव—अपौरुषेय तत्त्व से युक्त हैं ही। कदाचित् इसी लिए यह नाटक जितना

पाठ्य है उतना नाट्य नहीं। फिर भी यह रङ्गमञ्च पर खेला जा सकता है और उस दृष्टि से भी यह गुणों से हीन नहीं।

प्रस्तुत नाटक कुमारीजी की सर्वप्रथम रचना है। इसके पहले आपके कई साहित्यिक एवं समालोचनात्मक लेख हमारे देखने में आये हैं। समय था जब ऐसे ग्रन्थों का प्रस्तुत करना कान्यकुब्ज स्त्री-समाज में एक आश्चर्य की वस्तु समझी जाती थी। स्व० पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी ने एक ऐसे ही ग्रन्थ के विषय में कोई २५ वर्ष पहले अपना आश्चर्य भी प्रच्छन्न रूप से प्रकट किया था। अब युग परिवर्तित हो गया है और कान्यकुब्ज-समाज में भी सुशिक्षिता कन्याओं अथवा स्त्रियों का अभाव नहीं रहा। यह हमारे समाज की प्रगतिशीलता का एक जाव्वल्यमान प्रमाण है। कुमारी जी ने इस ग्रन्थ की रचना करके हमारे समाज एवं साहित्य का कल्याण ही किया है।

प्रस्तुत नाटक के प्रधान पात्र देवयानी, शर्मिष्ठा, शुक्र, बृहस्पति, ययाति वृषपर्वा तथा अन्य देव-दानव-गण हैं। देवयानी के चरित्र पर पहले ही प्रकाश डाला जा चुका है। शर्मिष्ठा का चरित्र भी न्यून नहीं। एक राजकन्या होकर वह देवयानी की दासी बनती है। कदाचित् इसी तपस्या ने उसे अन्त में सम्राज्ञी बनाया। महात्मा शुक्र और बृहस्पति की प्रतिस्पर्धा जगत्प्रसिद्ध है। कुमारीजी ने उसका विशेष उन्नयन नहीं किया है। राजा ययाति एवं वृषपर्वा के चरित्र में कोई उल्लेखनीय अन्तर नहीं है। दोनों धर्म-भीरु और कर्तव्य-परायण के रूप में अङ्कित किये गये हैं, यद्यपि वृषपर्वा की धर्म-भीरुता का कारण शुक्र से भय भी हो सकता है। इसके अतिरिक्त कुछ गौण पात्र भी हैं जो कथानक के सञ्चालन में पर्याप्त सहायता पहुँचाते हैं। कुमारीजी का अन्यतम उद्देश्य देवयानी का चरित्र अङ्कित करना ही जान पड़ता है इसी लिए कदाचित् अन्य पात्रों का उन्होंने बहुत कुछ चित्रण नहीं किया।

अन्त में हमें पूर्ण आशा है, कुमारीजी अपनी प्रतिभा का प्रयोग साहित्य की समृद्धि में करती रहेंगी। हिन्दी-संसार आपसे बहुत कुछ

आशा रखता है। आशा है, आप उस आशा को निष्फल न होने देंगी। कुमारीजी की प्रतिभा विकासोन्मुखी है और हम उसका विकसित स्वरूप देखना चाहते हैं। अपनी अध्ययनावस्था के संकुचित क्षेत्र में भी उन्होंने अपनी प्रतिभा को पर्याप्त रूप से विकसित कर लिया है। हमारी यह हार्दिक इच्छा है कि आप ग्रन्थ-प्रणयन में उत्तरोत्तर सफल हों।

अमावास्या
ज्येष्ठ १९९९ वि०

}

अनूप शर्मा
एम० ए०, एल० टी०

निवेदन

धार्मिक आख्यानों में अभिरुचि होने के कारण मैंने महाभारत को पढ़ने का दृढ़ निश्चय किया और लगभग दो-तीन वर्ष हुए जब मैंने इसका आद्योपान्त पठन किया। महाभारत को पढ़ते समय आदिपर्व में ही सर्वप्रथम खटकनेवाली बात, देवयानी और ययाति की विवाह-सम्बन्धी आख्यायिका थी। आचार्य शुक्र ब्रह्मर्षि थे। उन्होंने अपनी पुत्री का विवाह एक अब्राह्मण—क्षत्रिय—के साथ करना कैसे स्वीकार कर लिया ? यद्यपि वह काल आर्य-सभ्यता का उषःकाल है फिर भी हमारी अपरिवर्तन-शील आर्य-संस्कृति के सामाजिक नियमों का उल्लङ्घन कभी किसी भी उत्तरदायी धर्मज्ञाता ने नहीं किया। आजकल वर्णाश्रम धर्म के अजेय गढ़ को सुरक्षित न देखनेवाले कुछ सुधारक इसी सम्बन्ध को आदर्श मान-कर अन्तर्जातीय विवाह का समर्थन करते हैं परन्तु कदाचित् उन्हें यह बात स्मरण नहीं रहती कि व्यापक नियमों में एक-आध अपवाद का होना या तो संयोग अथवा कारण-विशेष ही कहा जा सकता है। मेरी दृष्टि में देवयानी और ययाति का वैवाहिक सम्बन्ध किसी कारणवश ही हुआ था और उन कारणों का स्पष्टीकरण नाटक में यथासम्भव किया गया है। उन्हीं कारणों का सूक्ष्म सङ्केत महाभारत में भी दृष्टिगोचर होता है।

महाभारत में इस विवाह का कारण इस प्रकार है :—

शुक्राचार्य के आश्रम में कुछ समय रहकर और मृतसञ्जीविनी विद्या उपार्जन करने के उपरान्त कच अपने निवास-स्थान को प्रस्थान करने को प्रस्तुत होता है। देवयानी उसी समय विवाह का प्रस्ताव करती है। कच अस्वीकार करता है। देवयानी कच को शाप दे देती है और शापित कच क्रोध और आवेश में आकर देवयानी को ब्राह्मण वर न मिलने का शाप दे देता है। फलतः देवयानी एक अब्राह्मण वर से

विवाहित होती है और शुक्राचार्य को भी नियति की आज्ञा का पालन करना पड़ता है ।

महाभारत में देवगुरु आचार्य बृहस्पति के पुत्र कच का शत्रु-शिविर में जाकर मृतसञ्जीविनी विद्या का ज्ञान प्राप्त करने का वर्णन है । वहाँ देववर्ग कच से विद्योपार्जन करने के लिए प्रार्थना करते हैं । कच उनकी प्रार्थना को स्वीकार करके आचार्य शुक्र के यहाँ जाकर अपने जीवन को सङ्कट में डाल देते हैं । ऐसे भयङ्कर समय में कच का विद्योपार्जन करने के लिए जाना उनको एक महान् चरित्रवान् प्रमाणित करता है । इस नाटक में कच के विद्योपार्जन के लिए जाने की घटना कुछ विस्तृत रूपेण वर्णित की गई है परन्तु सिद्धान्ततः मूल कथा से भिन्नता नहीं आने पाई है । यहाँ भी कच अपनी इच्छा से जाते हैं और प्रस्तावित कार्य को सुचारु रूप से सम्पादित करते हैं । कच आचार्य शुक्र के आश्रम में रहकर आदर्श ब्रह्मचारीवत् व्यवहार करके एक आर्य युवक की मर्यादा के महत्त्व को उच्च शिखर पर पहुँचा देते हैं । विदा होते समय देवयानी की वार्ता कच को धर्म-संकट में डाल देती है । कच एक मार्ग ग्रहण करते हैं और वह मार्ग देवयानी के प्रति घातक सिद्ध होता है । यहीं से देवयानी का सामाजिक पतन होना आरम्भ हो जाता है ।

आचार्य शुक्र की आज्ञा से देवयानी का विवाह राजा ययाति के साथ होता है और शर्मिष्ठा अपनी सहचरियों के साथ जाकर उसकी दासी बनकर रहती है । आचार्य शुक्र ययाति को चेतावनी देते हुए कहते हैं कि शर्मिष्ठा के साथ रानियों की भाँति व्यवहार तो हो परन्तु वह देवयानी की सपत्नी बनने की अधिकारिणी नहीं हो सकती । महर्षि शुक्र की आज्ञा के प्रतिकूल वह देवयानी की सपत्नी बनती है । नाटक में सम्बन्धित घटनाओं का आश्रय लेकर शर्मिष्ठा-ययाति-विवाह भी दिखलाया गया है । परन्तु ऐसा करने से मूल कथा में अन्तर नहीं पड़ता । महाभारत में तत्पश्चात् ययाति के शापादि का वर्णन है परन्तु वह कथा ययाति से अधिक सम्बन्धित होने के कारण वर्णन नहीं की गई ।

‘देवयानी’ नाटक एक पौराणिक आख्यायिका के आधार पर लिखा गया है, अतः इसमें अपौरुषेय (Supernatural Elements) घटनाओं का आना स्वाभाविक है। मैंने उन घटनाओं को रूपक और समासोक्ति न मानकर, वास्तविक रूप देकर, उनका वर्णन किया है। कच का बारम्बार मरकर जीना, पेट फाड़कर बाहर निकलना तथा पेट में ही विद्या सीख लेना इत्यादि घटनाओं का वर्णन भी इस नाटक में है। आधुनिक युग में ऐसे नाटकों का अभिनय कुछ अप्राकृतिक अवश्य प्रतीत होगा, परन्तु इसके लिए मूल कथा पर पट नहीं ढाला जा सकता।

महाभारत में वर्णित यह देवासुर-संग्राम एक सांस्कृतिक युद्ध है। देवयानी आर्य-धर्म की रक्षा चाहती थी, इसी लिए उसने अपना वैवाहिक सम्बन्ध कच से स्थापित करना चाहा परन्तु कच ने इसे इस रूप में नहीं देखा। कच की इसी एक भूल ने सुरों के भावी पट पर कलङ्क की एक अमिट रेखा छोड़ दी। यदि कच देवयानी की बात मान लेता तो कदाचित् देवासुर-संग्राम का एक दूसरा ही रूप होता।

संप्रति देवयानी नाटक एक विशिष्ट दृष्टिकोण से लिखा गया है अतः मूल कथा से कुछ भिन्न अवश्य प्रतीत होता होगा। इसमें आचार्य शुक्र ब्राह्मण होते हुए भी अपनी पैतृक सम्पत्ति—आर्य संस्कृति—के प्रति विरक्ति प्रदर्शित करते हुए दिखलाई पड़ते हैं। वे एक ऐसे धर्म-सङ्कट में पड़ जाते हैं कि कर्तव्याकर्तव्य का उन्हें ज्ञान ही नहीं रहता। वे असुरों को सहायता देने का वचन देते हैं क्योंकि शरणागत की रक्षा करना वे अपना परम कर्तव्य समझते हैं। अतः उन्हें बहुत-से अवसरों पर अपनी इच्छा के प्रतिकूल भी कार्य करना पड़ता है। असुरों द्वारा दुर्व्यवहार किये जाने पर भी वे अपनी प्रतिज्ञा नहीं भूलते। स्वयं देवगुरु बृहस्पति के प्रार्थना करने पर भी वे अपनी प्रतिज्ञा पर मेरु-वत् अचल रहते हैं। अपनी पुत्री देवयानी को प्राणों से अधिक प्यारी मानते हुए भी वे उसके हठ और आग्रह करने पर भी असुरों का साथ नहीं छोड़ते। ऐसी स्थिति में यह नाटक घात और प्रतिघातों के संघर्ष से विशेष अभिनेय हो जाता है

इस नाटक में न तो पूर्ण रूपेण भारतीय नाट्यशास्त्र के नियमों का पालन हुआ है और न विदेशी नाटकों की व्यावहारिकता का । यथा-सम्भव इस नाटक को अभिनेय बनाने का प्रयत्न किया गया है । भाषा को भी जटिलता के दोष से सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया गया है । सम्भव रूप से काल, समय और क्रिया के सन्धि-त्रय का पालन किया गया है । परन्तु इन नियमों को अधिक जटिल न मानने के कारण इस नियम में बहुत कुछ शिथिलता भी पाई जाती है । हमारे भारतीय नाटककार इस सन्धि-त्रय की महत्ता को उस सीमा तक नहीं स्वीकार करते जिस सीमा तक योरप के नाटककार किसी समय किया करते थे ।

जनरुचि सदैव से शृंगार रस की पक्षपातिनी रही है । अशृंगारिक काव्य शुष्क, नीरस और तृतीय श्रेणी का समझा जाता है । जिस नाटक अथवा सिनेमा फ़िल्म में रोमांस नहीं होता वह जनता को अधिक रुचिकर भी नहीं प्रतीत होता । इस रुचि-भिन्नता से मुझे कुछ विरोध नहीं । प्रत्येक व्यक्ति अपना स्वतन्त्र विचार रखता है और ऐसा करने का उसे पूर्ण अधिकार भी है । परन्तु इस नाटक में शृङ्गार-रस को उदात्तता न प्राप्त हो सकी, अतः सम्भव है कि किन्हीं लोगों को यह नीरस प्रतीत हो । परन्तु इस प्रकार के नाटक भी अपना निज का स्थान रखते हैं । प्रस्तुत नाटक को हमारे सभी भाई बहन निःसङ्कोच भाव से पढ़ सकते हैं—अभिनय कर सकते हैं ।

इस नाटक में व्यक्ति और तत्त्व का संघर्षण दिखलाया गया है । आचार्य शुक्र अपने व्यक्तित्व को महत्त्व देखकर समाज को भूल जाते हैं । देवयानी के शब्दों में कोई भी व्यक्ति समाज के विरुद्ध कोई प्रतिज्ञा कर ही नहीं सकता । कोई भी हिन्दू अपनी जाति, अपने धर्म और अपनी संस्कृति के प्रति कोई भी ऐसा व्यवहार नहीं कर सकता जो किसी प्रकार से समाज का घातक हो । शुक्राचार्य की प्रतिज्ञा ऐसी ही थी । देवासुर-संग्राम में उन्होंने अनायी को सहायता देने का वचन दिया और अपनी व्यक्ति-गत प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहे । उन्हें सिद्धान्ततः ऐसा करना उचित न था ।

वे तत्त्व को भूलकर व्यक्ति को ही श्रेष्ठतम समझते रहे। अतः समाज में शुक्र को वह आदर न मिल सका जो एक सत्यवादी, दृढ़प्रतिज्ञ को मिलना चाहिए था। भगवान् कृष्ण ने अपने चरित्र से यही सिद्ध किया कि समाज-हित के लिए, धर्म और संस्कृति की रक्षा के लिए, व्यक्तिगत प्रतिज्ञा का कोई मूल्य नहीं। कोई धर्मात्मा और नीतिज्ञ, कृष्ण को असत्यवादी नहीं कहता। जब मनुष्य तत्त्व की ओर से विरक्त होकर व्यक्तित्व को महत्त्व देने लगता है तभी से 'अपनी-अपनी किंगरी अपना-अपना राग' वाली कहावत चरितार्थ होने लगती है और समाज विशृङ्खल हो जाता है। समाज की प्रगति रुक जाती है और वह छिन्न-भिन्न होने लगता है। अन्ततोगत्वा वह विनाश की ओर अग्रसर होना आरम्भ कर देता है।

इस प्रकार के व्यक्ति और तत्त्व के घात और प्रतिघातों को दिखलाने का प्रयत्न इस नाटक में किया गया है।

प्रस्तुत नाटक के सभी पात्र ऐतिहासिक ही हैं। किसी नवीन पात्र की कल्पना नहीं की गई। इस नाटक में देवयानी, आदि से अन्त तक, कार्य करती है अतः वह नाटक में एक विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। नाटक देवयानी के कथोपकथन से आरम्भ होकर उसी के कथोपकथन से समाप्त होता है। अन्य कोई पात्र वस्तुतः आदि से अन्त तक कार्य नहीं करता। नाटक का समस्त कथानक देवयानी पर ही केन्द्रित है अतः नाटक की नायिका देवयानी ही है और इसी कारण मैंने इस नाटक का नाम देवयानी ही रखना उपयुक्त समझा।

लेखिका

नाटक के पात्र

पुरुष-पात्र

बृहस्पति		देवगुरु ।
शुक्राचार्य		असुरों के आचार्य ।
कच		देवगुरु बृहस्पति का पुत्र ।
इन्द्र		देवराज ।
ब्रह्मा	}	देववर्ग ।
विष्णु		
शङ्कर		
ययाति		
वृषपर्व		राजा नहुष का पुत्र—क्षत्रिय राजा ।
अजक		असुरों का स्वामी—शर्मिष्ठा का पिता ।
अदर	}	असुरराज वृषपर्व का अनुज ।
कपट		राक्षस ।
अश्वग्रीव		
ऋषि, मुनि, देवता, राक्षस, शिष्य, गुप्तचर तथा सेवक इत्यादि ।		

स्त्री-पात्र

देवयानी	असुरगुरु शुक्राचार्य की पुत्री ।
शर्मिष्ठा	राजकुमारी — असुरराज वृषपर्व की पुत्री ।
शर्मिष्ठा की सखियाँ तथा देवयानी की धाय ।	

देवयानी

प्रथम अङ्क

दृश्य १

(शुक्राचार्य का प्रकोष्ठ)

शुक्राचार्य—मैं भृगु-पुत्र शुक्र क्या बृहस्पति से किसी बात में न्यून हूँ ! देवताओं ने इस दैत्यादैत्य-संग्राम में बृहस्पति को मुझसे श्रेष्ठतर समझा और इसी लिए न इस युद्ध में उन्हें अपना आचार्य नियुक्त किया । देवताओं की उन पर विशेष ममता है । वे उनका मुझसे अधिक सत्कार तथा सम्मान करते हैं । इन सब बातों का कारण ! मैंने तो एक सच्चे ब्राह्मण की भाँति एक वचन दे दिया है और उस वचन का प्राणपण से निर्वाह करूँगा । देखना है कि बृहस्पति राक्षसों की क्या हानि कर सकते हैं और राक्षस देवताओं पर कैसे विजय नहीं प्राप्त करते !

(देवयानी का प्रवेश,)

देवयानी—पिताजी ! यह आप क्या कह रहे थे ! आप इस देवासुर-संग्राम में राक्षसों की सहायता करेंगे ! क्या आप यह देखना सहन कर सकेंगे कि राक्षस देवताओं पर विजयी हों । जिस आर्य-संस्कृति की रक्षा करना सभी आर्यों और विशेष कर ब्राह्मणों का कर्त्तव्य है, उसकी रक्षा यदि आप जैसे विद्वान् और महात्मा ही न करके इसका

पतन देखना चाहते हैं तो क्या यह आशा की जा सकती है कि इसकी भविष्य में कोई सुव्यवस्था होगी ?

शुक्राचार्य—पुत्री, मैं यह सब जानता हूँ किन्तु अब तो मैंने असुरों को सहायता देने की प्रतिज्ञा कर ली है ।

देवयानी—क्षमा पिताजी, क्षमा— इस प्रतिज्ञा का कारण ?

शुक्राचार्य—देवयानी, तुम्हें यह बात ज्ञात होनी चाहिए कि ब्राह्मण का हृदय पाषाण की भाँति कठोर और नवनीत की भाँति द्रवणशील होता है । वह अप्रसन्न होने पर कठोर से कठोर शाप दे सकता है और प्रसन्न होने पर असम्भव को भी सम्भव बना सकता है । यही कारण है कि ब्राह्मणों से सभी डरते हैं । त्याग की मात्रा सबसे अधिक ब्राह्मणों में ही होती है । मैंने इस विषय में आगा-पीछा कुछ भी नहीं सोचा और राज्ञों को सहायता का वचन दे दिया । अब उसे अवश्य निभाऊँगा ।

देवयानी—पिताजी, यह तो मुझे ज्ञात है ; परन्तु यह बात जानने की मेरी उत्कट अभिलाषा है कि आपने इस देवासुर-संग्राम में असुरों का पक्ष लेने की प्रतिज्ञा क्यों कर ली । क्या ऐसे सांस्कृतिक युद्ध में किसी आर्य का अनाथों की सहायता करना उचित होगा ?

शुक्राचार्य—देवयानी, जिस बात को जानने के लिए तुम इतनी उत्सुक हो वही मैं कह रहा हूँ । आज प्रातः जब मैं नित्यकर्म से निवृत्त होकर नदी के तट से घर लौट रहा था, असहाय राज्ञस आये और मेरे पैरों पर गिर पड़े । वे बहुत ही व्याकुल थे । देवताओं ने बृहस्पति को अपना आचार्य निर्वाचित ही कर लिया था । वे युद्ध में उनकी सहायता भी कर रहे थे, परन्तु राज्ञों का कोई आचार्य न था । इनके बहुत प्रार्थना करने पर मेरे हृदय में इनके प्रति कुछ दया और सहानुभूति जागृत हुई और मैंने बिना भविष्य की चिन्ता किये हुए इन राज्ञों को सहायता देना स्वीकार कर लिया । अब मेरे सम्मुख इनको सहायता देने का ही प्रश्न है ।

देवयानी—पिताजी, पुत्री पिता को उपदेश नहीं दे सकती । ऐसे विषयों में मेरा आपसे कुछ कहना छोटे मुँह बड़ी बात करना होगा । परन्तु इस परिस्थिति में पड़कर मैं बहुत ही ब्याकुल हो उठी हूँ, अतः मैं यह कहने की धृष्टता कर रही हूँ कि राज्ञों की सहायता करना आपके लिए उचित नहीं । सदैव पाप-रत राज्ञस अधार्मिक कार्य ही किया करते हैं । ये तो वैसे ही आततायी हैं । यदि इनका घोर विरोध न किया गया और यदि आप जैसे आचार्यों से ये उत्साहित किये गये तो ये अपनी पाप-धारा में समस्त संसार को बहा देंगे । इन नीचों को सहायता देना सर्प को दूध पिलाकर उसे अधिक विषधर बनाना है । अतः मैं तो आपसे यही प्रार्थना करूँगी कि आप इस युद्ध में आर्यों की ही सहायता करें । इन अनार्यों की विजय सत्कार्यों के लिए बड़ी ही घातक सिद्ध होगी । पृथ्वी उस भार को सहन न कर सकेगी । पिताजी ! आप ही बतलाएँ कि उस समय क्या होगा ।

शुक्राचार्य—(अन्धमनस्क) देवयानी, जिस समय मैंने राज्ञों की सहायता का वचन दिया था उस समय “मुझे सहायता देना है और मैं दूँगा” इसके अतिरिक्त मुझे अन्य किसी बात का ध्यान ही नहीं था । परन्तु अब मैंने जो एक बार कह दिया, वह सदैव के लिए कह दिया । मैं इसके लिए पश्चात्ताप नहीं करता । मैं तो अपनी प्रतिज्ञा पूरी ही करूँगा । देखें गुरु बृहस्पति देवों की कितनी सहायता करेंगे—अपने सञ्चित तपोबल में से कितना व्यय करेंगे—अपनी गाढ़ी कमाई में से कितना दान देंगे । अब यह ज्ञात हुए बिना न रह जायगा कि कौन कितनी गहराई में है ।

देवयानी—पिताजी, जहाँ तक मैंने सुना है, ऐतिहासिक ग्रन्थों में देखा है, सभी स्थानों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अन्त में जय धर्म की ही होती है । धर्म-मार्ग ही श्रेयस्कर है । अधर्म का मार्ग कुछ समय के लिए सुखकर हो सकता है परन्तु श्रेयस्कर नहीं ।

पिताजी, मैं आपसे पुनः प्रार्थना करती हूँ कि आप इस युद्ध में राक्षसों की सहायता न करें।

(एक चर का प्रवेश)।

(चर प्रणाम करके खड़ा हो जाता है)

शुक्राचार्य—कौन ? दूत ! मैं तुम्हारा स्मरण ही कर रहा था। मुझे स्वयं आज के युद्ध का समाचार जानने की उत्सुकता थी। बोलो, आज के युद्ध में किसकी जय और किसकी पराजय हुई।

चर—आचार्य, आज के युद्ध ने बड़ा ही भयङ्कर रूप धारण किया। कुछ समय तक तो राक्षस विजयी होते दिखाई दिये। वे बहुत ही प्रसन्न तथा उत्साहित भी थे। परन्तु न जाने किन कारणों से अन्त में पराजित हो गये। मेरा विचार है कि आज के युद्ध में राक्षसों की पर्याप्त हानि हुई है। जहाँ तक मेरा ध्यान है, राक्षस इस हानि से अपने को सँभाल नहीं सकते। मैंने राक्षसों की इतनी जन-हानि कभी नहीं देखी।

शुक्राचार्य—क्या अभी युद्ध हो रहा है ? क्या युद्धक्षेत्र से सैनिक अभी लौटे नहीं ?

चर—नहीं महाराज, सैनिक अभी नहीं लौटे। युद्ध चल रहा है।

शुक्राचार्य—महाराज इस समय कहाँ हैं ? क्या उन्होंने युद्ध-सम्बन्धी कोई समाचार भेजा है ?

चर—महाराज वृषपर्वा ने मुझे आपकी सेवा में भेजा है। वे युद्ध से लौटकर आपका दर्शन करेंगे।

शुक्राचार्य—(कुछ चिन्तित) राक्षसों के पराजित होने का कारण कुछ समझ में नहीं आता। देवताओं को आज कौन-सी अजित शक्ति प्राप्त हो गई जिससे वे इतने बली हो गये और राक्षसों पर विजयी होने की आकांक्षा कर रहे हैं। दूत, जाओ। मैं स्वयं महाराज से इस विषय में बात करूँगा। मैं तो स्वयं उनसे मिलना चाहता था।

चर—जो आज्ञा।

(चर बाहर आकर फिर लौट आता है)

चर—आचार्य, महाराज आपके श्रीचरणों के दर्शनार्थ आये हैं ।

शुक्राचार्य—जाओ, महाराज को शीघ्र लिवा लाओ । (देवयानी से)
देवयानी, असुरराज वृषपर्वा मुझसे मिलने आ रहे हैं । उनके साथ बहुत से राक्षसगण होंगे । तुम अपने स्थान पर चली जाओ ।

[देवयानी का एक ओर से अन्दर जाना, दूसरी ओर से वृषपर्वा तथा अन्य असुर सेनाधिपतियों का प्रवेश । वृषपर्वा तथा सब राक्षस आचार्य शुक्र के चरणों पर गिरते हैं ।]

वृषपर्वा—भगवन्, हम लोगों की रक्षा कीजिए । आप-सा आचार्य पाकर भी क्या हम लोगों की पराजय होगी ? इन देवों को आज बहुत ही प्रसन्नता है । क्या आपका आचार्यत्व प्राप्त होते हुए भी हम लोग देवों द्वारा विजित होंगे ? हमारे उपहास के साथ वे आपका भी उपहास करते हैं । क्या अब हम लोग विजयी न हो सकेंगे ?

शुक्राचार्य—(आश्चर्य से) आज तुम लोग इतने घबराये हुए क्यों हो ? एक दिन की हार से पराजय नहीं होती—एक दौंव हारने से खेल हारा नहीं कहा जा सकता—एक पग हट जाने से कोई मनुष्य अपने पथ से विचलित नहीं कहा जा सकता । युद्ध में इस प्रकार की घबराहट ! तुम्हें अपनी शक्ति और मेरे शब्दों पर विश्वास होना चाहिए । धैर्य रक्खो, विजय तुम्हारी ही होगी ।

वृषपर्वा—आपसे क्या छिपा है ? आप सर्वज्ञ हैं और सम्भवतः चर ने भी आपसे युद्ध-समाचार बतलाया होगा, फिर भी आप हम लोगों से हमारे दुःख और अधैर्य का कारण पूछते हैं !

शुक्राचार्य—राजन्, तुम लोग बलवान् हो और देवों से संख्या में भी न्यून नहीं । अब युद्ध तो आरम्भ ही हो चुका है । इस समय घबराना तुम्हारे लिए हितकर नहीं हो सकता । यह तो समय

है—कभी अनुकूल होता है और कभी प्रतिकूल । यदि आज के युद्ध का फल तुम्हारे प्रतिकूल हुआ तो कल अनुकूल भी हो सकता है और होगा भी । मैं अपने वचनों को पुनः दुहराता हूँ । जाओ, विश्राम करो । मैं तुम्हारी सहायता अवश्य करूँगा और तुम इस युद्ध में विजयी भी होगे ।

वृषपर्वा—गुरुदेव की जय हो । आपकी कृपा से सभी कुछ हो सकता है । आपकी शक्ति असम्भव को सम्भव और सम्भव को असम्भव बना सकती है । परन्तु इन्द्र का वज्र, शङ्कर का त्रिशूल और विष्णु का चक्र हमारी अगणित सेना का संहार कर चुका है । हम इस क्षति की पूर्ति किस प्रकार कर सकेंगे ?

शुक्राचार्य—(कुछ क्षण विचार कर) अच्छा तो क्या यह सम्भव नहीं कि तुम लोग सन्धि कर लो और इस युद्ध को शान्त हो जाने दो ?

अजक—गुरुदेव की आज्ञा शिरोधार्य है । परन्तु आचार्य, आप स्वयं सोचें कि इन लोगों की सन्धि का कितना मूल्य है । ये सदैव से विश्वासघात करते चले आये हैं । क्या इनसे आज्ञा की जा सकती है कि अब हमारे साथ विश्वासघात न करेंगे ? समुद्रमन्थनवाली घटना तो अभी थोड़े ही समय की है ! उनका समस्त कार्य कपट के ही बल पर चलता है । जब महाराज स्वयं ही वचन और आशिष दे चुके हैं तो फिर अब सन्धि की आवश्यकता ही क्या ? युद्ध आप ही के सहारे पर आरम्भ किया गया है और आप ही के सहारे हम विजयी भी होंगे ।

अदर—और वे अब त्रैलोक्य का राज्य स्वयं ही लेना चाहते हैं । क्या हमारा कुछ भी भाग नहीं है ? क्या हमें राज्य नहीं चाहिए ? सुख भोगना देवता ही जानते हैं ! हम अपने पौरुष से वही प्राप्त कर लेंगे जिसके देवताओं ने छल, कपट और दम्भ से प्राप्त किया है । देवता सदैव छल की ही ओट लेते हैं । इसके साक्षी आप स्वयं हैं ।

शाम—हमें यह स्वीकार है कि वे हमारे अग्रज हैं परन्तु अग्रज होना 'सर्वशक्तिमान् होना' नहीं हो सकता। अग्रज सर्वभक्षी नहीं हो सकता। जो कुछ भी उनके सम्मुख जाता है, स्वाहा हो जाता है। यज्ञादि में भी केवल देवताओं को ही भाग मिलता है। प्रतीत तो ऐसा होता है कि हम लोगों का पूर्ण बहिष्कार किया गया है।

अश्वग्रीव—यह सब वार्तालाप निष्प्रयोजन है—व्यर्थ है। हमें उनसे कुछ माँगना नहीं है। हमें अपनी शक्ति से लेना है। कर्मयोगी भाग्य के सहारे नहीं बैठते—द्वार प्रति द्वार याचना नहीं करते।

शुक्राचार्य—तुम्हारा कथन ठीक है—सर्वथा उपयुक्त है। तुम अपने कार्य में दृढ़ता से लगे रहो। विजयश्री स्वागत करने स्वयं तुम्हारे पास आयेगी।

वृषपर्वा—देव, ये देवता अधिकांश तो अमृत पीने के कारण अमर हो गये हैं। देवताओं की सेना का नाश सम्भवतः हो ही नहीं सकता, अतः यह आप ही के वश की बात है कि हमारी सेना में भी कुछ ऐसा हो जाय जिससे हमारी सेना की क्षति-पूर्ति हो सके।

शुक्राचार्य—अच्छा, जाओ; मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि कल से युद्ध में गिरे हुए राज्ञस सैनिक मृत्यु के पाश में नहीं बँध सकते। मैं मृत-सञ्जीविनी विद्या का प्रयोग तुम राज्ञसों के लिए ही करूँगा। मैंने इसका प्रयोग आज तक किसी भी अवसर पर नहीं किया। मैं तुम्हारे गिरे हुए सैनिकों को निरन्तर जीवित करता रहूँगा।

वृषपर्वा—गुरुदेव की जय हो, हमें तो केवल आपका ही आश्रय है। हम तृषितों के लिए आप अमृत-वर्षा के समान हैं।

शुक्राचार्य—जाओ, सावधान हो, युद्ध की तैयारी करो।

राज्ञस—(प्रसन्नता से) महाराज की जय हो।

शुक्राचार्य—तुम्हारा कल्याण हो।

(नेपथ्य से)

हुए सुफल सब काम हमारे ।

विजय-दुन्दुभी अब न बजे क्यों, हम जीते सुर हारे ।

अब तक रहे विकल जगती में, असुर अनाथ विचारे ।

पाकर शुक्र समान सिद्ध गुरु, हुए मुदित-मन सारे ॥

सुरपति को है एक वज्र-बल, शूल उमापति धारे ।

है हरि के कर चक्र सुदर्शन हम हैं शुक्र-सहारे ॥

दृश्य २

तपोवन—बृहस्पति की कुटी

बृहस्पति के आश्रम में देवताओं की बैठक

बृहस्पति—(कुछ चिन्तित होकर) तुम लोग इतने व्याकुल और चिन्तित क्यों हो रहे हो !

इन्द्र—आचार्य, आज के युद्ध में हम लोग विजयी हुए थे और विजय के उपलक्ष में हम लोग विजयोत्सव मनाने जा रहे थे कि गुप्त चरों से ज्ञात हुआ कि रण-क्षेत्र से भागकर राक्षसों ने अपने आचार्य शुक्रजी के पास जाकर अपनी दशा का वर्णन किया और उनकी प्रार्थना पर आचार्य शुक्र ने निहत राक्षसों को अपनी मृतसञ्जीविनी विद्या से जीवित कर देने की प्रतिज्ञा कर ली है ।

शङ्कर—आचार्य जी ने ! यदि शुक्राचार्य जी ने ऐसी प्रतिज्ञा कर ली है तो हमारे लिए विजय नितान्त असम्भव है । ऐसी दशा में हमें विजय की आशा करनी ही नहीं चाहिए ।

विष्णु—हाँ, सुना जाता है कि उन्होंने यह भी कहा कि देव-वर्ग सदैव से विश्वासघात ही करता आया है । अब उन सब का प्रतिकार

किया जायगा । आचार्य शुक्र का आश्रय पाकर वे अब फूले नहीं समाते—किसी को कुछ समझते ही नहीं ।

बृहस्पति—तम लोगों को इतना दुखी नहीं होना चाहिए । धर्म की अन्त में जय होती ही है । इस युद्ध में भी विजय तुम्हारी ही होगी । तुम लोगों ने अपने स्वार्थ के लिए कोई विश्वासघात नहीं किया—निज के लाभ के लिए छल से किसी को वञ्चित नहीं किया । कदाचित् विश्वासघात और छल से उनका अभिप्राय समुद्र-मन्थन और अमृत-विभाजन से होगा । बिना अमृतपान किये ही वे पृथ्वी को चटाई की भाँति लपेट सकते हैं । वे किस असम्भव को सम्भव नहीं कर सकते ? अमृत पीकर वे पृथ्वी को और भी अधिक भारयुक्त ही करते । तुम लोगों ने यदि ऊपरी दिखावे में कोई कार्य धर्मविरुद्ध किया भी तो उसके मूल में धर्म की एक महती आकांक्षा रही है । वे सभी कार्य धर्म के गूढ़तम रहस्यों का स्पष्टीकरण करते हैं । तुम लोगों ने कोई भी कार्य स्वार्थ अथवा आत्मतृप्ति के भाव से प्रभावित होकर नहीं किया । स्वार्थी दूसरों को भी स्वार्थयुक्त ही देखता है । लोभी की दृष्टि में संसार के सभी जड़-चेतन लोभ के ही अवतार हैं । कामी स्वयं को साधु और अन्य सभी को कामुक समझता है । यदि गच्छस तुम्हें विश्वासघातक और स्वार्थी समझते हैं तो इसमें न तो दोष तुम्हारा है और न उनका । वे जो कुछ कहते हैं कहने दो । तुम्हें जो कुछ करना है करो । शुभ कार्य का परिणाम भी श्रेयस्कर और सुखद ही होगा ।

इन्द्र—देव, मैंने यह भी सुना है कि असुर-गुरु शुक्राचार्य का यह कहना है कि देवताओं ने हमें अपना आचार्य न बनाकर (श्रीमान् का नाम लेकर) आपको आचार्य बनाया । शुक्राचार्य जी यह भी कहते हैं कि मैं देवगुरु से किसी बात में कम नहीं हूँ । वे देवगुरु न हो सकने के कारण अपने को अपमानित भी समझते हैं । आचार्य शुक्र ने तो एक प्रकार से आपको भी चुनौती दी है । अब यह युद्ध

केवल शस्त्रों तक ही सीमित न रहकर शास्त्र और तपोबल पर आधारित हो गया है।

ब्रह्मा—देव, राक्षस तो मृतसञ्जीविनी से जीवित हो जायँगे परन्तु हम देवताओं का फिर क्या होगा ? इस बात को देखते हुए राक्षस कभी भी पराजित नहीं हो सकते। हानि और पराजय देवताओं की ही होगी। हम लोग अमर होकर भी असुरों से जीत नहीं सकते और हमारे सब सैनिक अमर भी तो नहीं हैं।

बृहस्पति—(कुछ विचार कर) मुझे तो मृतसञ्जीविनी विद्या आती नहीं। तुम्हारे मृत सैनिकों को जीवित करने का उपाय मैं क्या बताऊँ ? कदाचित् आचार्य शुक्र ने यह ईर्ष्यावश ही किया है। अच्छा, मैं स्वयं उनके पास जाऊँगा और उनकी अप्रसन्नता का कारण पूछूँगा। वे बड़े ही दृढ़प्रतिष्ठ ब्राह्मण हैं। हम एक दूसरे से बाल्यावस्था से ही परिचित हैं। परन्तु जहाँ तक सम्भव होगा मैं तुम लोगों की ओर से शुक्राचार्यजी से प्रार्थना और क्षमा याचना करूँगा। यद्यपि यह सम्भव नहीं प्रतीत होता कि आचार्य शुक्र अपने पक्ष अथवा अपने वचनों का त्याग करेंगे परन्तु मैं इस सम्बन्ध में पूर्ण प्रयत्न करूँगा और वे जिस प्रकार प्रसन्न होंगे, प्रसन्न करने की चेष्टा करूँगा। मैं अपने गुरुभ्राता से प्रथम बार यही भिक्षा-याचना करूँगा।

विष्णु—परन्तु आप उनसे मिलने कहाँ जायँगे ? क्या उनके घर पर ?

बृहस्पति—मैं भी यही विचार कर रहा हूँ कि उनसे मिलना कहाँ उपयुक्त होगा। अच्छा, युद्धक्षेत्र में जब वे राक्षसों को जीवित करने आयँगे उसी समय मैं उनसे इस सम्बन्ध में वार्ता करूँगा। वही इस कार्य के लिए उपयुक्त अवसर हो सकता है।

इन्द्र—हाँ महाराज, वही अवसर उपयुक्त होगा।

बृहस्पति—अच्छा, आप लोग स्वस्थ हों। कल मैं शुक्राचार्य से मिलने के उपरान्त आप लोगों से बात करूँगा।

(प्रस्थान)

सभा-विसर्जन

पट परिवर्तन

दृश्य ३

रणस्थल

[एक ओर से शुक्राचार्य का मृत राक्षसों को जीवित करने के लिए और दूसरी ओर से बृहस्पति का उनसे मिलने के लिए आना।]

बृहस्पति—(नत होकर) मैं महर्षि अङ्गिरा का पुत्र बृहस्पति आपके श्री-चरणों में प्रणाम करता हूँ।

शुक्राचार्य—(आशीर्वाद देते हुए और आश्चर्य से) आप ! यहाँ ! देवगुरु, आपका युद्ध-भूमि में आना कैसे हुआ ?

बृहस्पति—देव, क्या मैं भी यह पूछने की धृष्टता कर सकता हूँ कि आप भी इस स्थान पर इस समय कैसे पधारे ?

शुक्राचार्य—देवगुरु, मैंने राक्षसों से यह प्रतिज्ञा की है कि इस देवादेव-संग्राम में सभी मृत राक्षसों को जीवित कर दिया करूँगा। अतः मैं आज मृत सैनिकों को जीवित करने के लिए ही आया हूँ। परन्तु देवगुरु, तुम यहाँ इस समय कैसे ? तुम्हारा यहाँ आना तो आश्चर्य में डालनेवाली बात है। (बृहस्पति को मौन देखकर) कहो, मौन क्यों ?

बृहस्पति—आचार्य, मैं आपसे यह प्रार्थना करने आया था कि आपकी कृपा तो देवों पर अधिक होनी चाहिए। परन्तु इसके विपरीत श्रीमान् उनके विरुद्ध राक्षसों का साथ दे रहे हैं। आपके अनुशासन

में रहकर आपसे आशीर्वादित होकर राज्ञस अजेय हो जाते हैं। क्या आपका ऐसा करना आर्य-संस्कृति की मर्यादा के विरुद्ध नहीं है? क्या आप जैसे ब्राह्मण आचार्यों का अनार्यों पर दया करना धर्म और जाति के विपरीत नहीं है? (हाथ जोड़कर) मैं आपसे यही करबद्ध प्रार्थना करने आया हूँ कि आप इस देवासुर-संग्राम में राज्ञों का साथ न देकर देवताओं पर कृपा करें। आर्य-संस्कृति की रक्षा का भार सभी आर्य घटकों पर है। दूसरे, इन दीन देवताओं ने आपका कुछ अप्रिय भी नहीं किया है। वे आपके तप और त्याग की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते हैं। आप स्वयं विचार कर निर्णय करें कि इस युद्ध में आप के लिए राज्ञों का सहायक होना कहाँ तक उचित है।

शुक्राचार्य—देवगुरु, मैं किसी विशेष कारण से देवताओं से अप्रसन्न नहीं हूँ परन्तु राज्ञों से प्रसन्न होने के मेरे पास पर्याप्त कारण हैं। देवताओं ने तुम्हें अपना आचार्य नियुक्त किया। राज्ञस असहाय थे, मेरे पास आये और सहायता की भिक्षा माँगी। मैंने भूत और भविष्य का कुछ भी विचार न कर उनके सहायता का वचन दे दिया। अब वचन दे दिया है, इसके अतिरिक्त मेरे सम्मुख कोई अन्य प्रश्न नहीं है। देवगुरु! तुम अपने आप को इसी परिस्थिति में डालो और फिर विचार करो कि क्या तुम प्रतिज्ञा करके पलट सकते हो। जिससे तुमने प्रतिज्ञा की है उसके प्रति भी तुम्हारा कोई कर्तव्य है? मैं महर्षि भृगु के वंश में उत्पन्न हुआ हूँ। मुझे अपनी वंश-मर्यादा का ध्यान है। मैं असत्य से बढ़कर भारी पाप और कोई नहीं समझता। कहिए देवगुरु, क्या इतना सुनकर भी तुम्हें कुछ और कहना है?

बृहस्पति—आचार्य, क्षमा कीजिए। मेरे तर्क का तो उत्तर हुआ ही नहीं। यहाँ प्रश्न तो केवल यह है कि प्रत्येक आर्य पर आर्य-संस्कृति की रक्षा का भार है। आप उस भार की गुरुता पर विचार नहीं करते।

आप उस लता की जड़ काट रहे हैं जिसको सींचकर पल्लवित और पुष्पित करना आपका कर्तव्य होना चाहिए। रही प्रतिज्ञा की बात, सो वह तो आप कर ही नहीं सकते। आर्यसंस्कृति का आप पर बहुत बड़ा भार है। इसके विपरीत आप कोई प्रतिज्ञा नहीं कर सकते। देवताओं ने जो कुछ भी समझकर मुझे अपना गुरु बनाया हो, परन्तु मैं अपनी ओर से तथा देवताओं की ओर से आपको देवगुरु बनाता हूँ। देवताओं को इसमें कुछ आपत्ति नहीं होगी और मैं तो सदैव से आपकी सेवा के लिए उद्यत ही रहता हूँ। यदि आप मेरी इस प्रार्थना को स्वीकार कर लेते हैं तो सभी भावी अनर्थों का सुधार हो जाता है। महाराज, बतलाइए कि क्या आप मेरी इस प्रार्थना पर अनुकूल विचार करेंगे। मेरे विचार से व्यक्ति समाज-हित के विरुद्ध कोई प्रतिज्ञा कर ही नहीं सकता।

शुक्राचार्य—(कुछ चिन्तित और दुःखित होकर) बृहस्पति, तुमने मुझे सन्देह और संशय के बवण्डर में उड़ा दिया, परन्तु कुछ भी हो मैं अपने कर्तव्य केन्द्र से परे नहीं हो सकता। मुझे इस सन्धय यह विचार नहीं करना है कि मुझे क्या करना चाहिए था। मैं इस समय यह नहीं सोचता हूँ कि मैंने ऐसी प्रतिज्ञा क्यों की। मैंने कुछ प्रतिज्ञा की है और अब मुझे उसका निर्वाह करना है। मैं किये हुए कार्य पर पश्चात्ताप नहीं करता इसलिए पापी नहीं कहा जा सकता। मैं उस कार्य को अब भी उचित समझता हूँ कि मैंने ठीक प्रतिज्ञा की, मुझे उन पर दया आई और मैंने उनको सहायता का वचन दे दिया। उन वचनों को अब मैं अन्त तक निबाहूँगा।

बृहस्पति—आचार्य, इस प्रतिज्ञा से आपकी न तो कीर्ति-वृद्धि होती है, न स्वार्थ-लाभ और न पुण्य की प्राप्ति ही।

शुक्राचार्य—मुझे इन तीनों वस्तुओं में से कुछ भी नहीं चाहिए। प्रतिज्ञा करके उसे पूर्ण करने से जो फल मिलता है वह मुझे स्वयं मिलेगा। मैं उसके अतिरिक्त कुछ चाहता भी नहीं।

बृहस्पति—कदाचित् वह फल श्रेयस्कर न होगा ।

शुक्राचार्य—देवगुरु, तुम्हारे ये शब्द यदि भविष्यवाणी हैं तो इन शब्दों की सत्यता भविष्य ही प्रमाणित करेगा और यदि तुम्हारे ये शब्द शाप हैं तो मुझे वे भी सहर्ष स्वीकार हैं । मैंने एक मार्ग ग्रहण किया है । वह मुझे कहाँ ले जायगा—उससे मेरा अभिप्राय नहीं । वह चाहे उन्नति का शिखर हो अथवा अवनति का गर्त । इन शब्दों के अतिरिक्त और किन शब्दों द्वारा मैं आपको अपनी हृद प्रतिज्ञा का परिचय दूँ ? मुझे दुःख है कि आपकी इच्छा पूर्ण न कर सका । इस प्रतिज्ञा के अतिरिक्त आप देवताओं के लाभ के लिए जो कुछ चाहते हों कहें, मैं उस पर विचार करूँगा और यथाशक्ति पूर्ण करने का प्रयत्न भी । मैं अपनी मृतसञ्जीविनी विद्या से अभी राक्षसों को जीवित करने आया था । अब मैं उनको जीवित करने जा रहा हूँ । मेरे हृदय में अब देवगुरु बनने की लालसा नहीं रही । इस पद को तुमने स्वीकार किया है । अब तुम्हारा भी यही कर्तव्य है कि देवताओं के हित के लिए जो कर सकते हो, करो । स्पष्ट वक्तता के लिए क्षमा चाहता हूँ ।

बृहस्पति—तो क्या अब मैं निराश लौट जाऊँ ?

शुक्राचार्य—जो कुछ मैं कह चुका, उसके अतिरिक्त मुझे कुछ और नहीं कहना है ।

(बृहस्पति का दुखी होकर प्रस्थान)

पट-परिवर्तन



दृश्य ४

देवलोक में इन्द्र की सभा

(सब देवता यथास्थान चिन्तित बैठे हैं)

इन्द्र—गुरुजी को युद्धस्थल में गये हुए पर्याप्त समय हो चुका है परन्तु अभी तक उनका कुछ भी समाचार नहीं ज्ञात हुआ। गुप्तचरों ने भी इस सम्बन्ध में कुछ समाचार नहीं दिया।

विष्णु—मुझे तो चिन्ता हो रही है। शुक्राचार्यजी कदाचित् ही समझाये समझें। हैं तो वे ब्राह्मण परन्तु अब तो वे असुर-गुरु ही ठहरे।

शङ्कर—मुझे तो इस सम्बन्ध में पहले से ही निराशा थी परन्तु कर्म करना अपना कर्तव्य है, फल अपने वश की बात नहीं। प्रयत्न कर लिया गया। यदि शुक्राचार्य अपनी प्रतिज्ञा पर अड़े हुए हैं तो इसकी औषधि ही क्या? हम लोगों को पूर्ण साहस और शक्ति से असुरों का सामना करना है।

(एक चर का प्रवेश)

चर—(नत होकर) देव, गुरुदेव पधारे हैं। वह अभी इसी समय आपसे भेंट करना चाहते हैं।

इन्द्र—दूत, हमारे दरबार में किसी समय किसी तपस्वी ब्राह्मण के आने के लिए कोई रुकावट नहीं फिर वे तो हमारे पूज्य गुरुदेव हैं। उनके लिए इस प्रकार की आज्ञा लेना तुम्हारी अपने कर्त्तव्य से असावधानता सूचित करता है।

[राजा इन्द्र का चर के साथ बाहर जाकर बृहस्पति को अपने साथ लाना और इन्द्र का स्वयं तथा अन्य देवताओं का उन्हें प्रणाम करना ।]

बृहस्पति—चिरञ्जीव हो, धर्म में वृद्धि हो—

(सब उत्सुकता से बृहस्पति की ओर देखते हैं)

— मैं समझता हूँ कि आप सब आर्य-संस्कृति के प्रतिनिधि देववग, ब्राह्मण और तपस्वी मेरा समाचार सुनने के लिए उत्सुक हैं, परन्तु मुझे यह कहते दुःख हो रहा है कि मैं अपने प्रयत्न में सफल न हो सका। मैं आचार्य शुक्र की प्रतिज्ञा की गम्भीरता को अपनी बातों से न उड़ा सका।

इन्द्र—आचार्य, शुक्राचार्यजी ने क्या कहा ?

बृहस्पति—उन्होंने कहा कि मैं प्रतिज्ञाबद्ध हूँ। आपकी इस सम्बन्ध में किसी प्रकार सहायता नहीं कर सकता।

शङ्कर—देव, हमारे लिए उनके ये वाक्यरत्न अहितकर ही हैं परन्तु उन्होंने ऐसा कहकर एक आदर्श ब्राह्मण का परिचय दिया है। ब्राह्मण अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिए आदि से आज तक प्रसिद्ध रहे हैं।

बृहस्पति—अवश्य, मैं तुमसे इस बात में पूर्ण रूप से सहमत हूँ। प्रतिज्ञा करके पलटना किसी भी व्यक्ति को शोभा नहीं देता और एक ब्राह्मण के लिए इससे अधिक कोई निन्द्य कार्य हो ही नहीं सकता। मैं उनसे सहायता माँगने गया था। इसमें मेरा स्वार्थ था। यदि आर्य-संस्कृति का प्रश्न न होता तो मैं आचार्य शुक्र को अपना गुरु-भ्राता ही नहीं अपना गुरु मान लेता। शुक्रजी को भी इस धर्म-संकट का ध्यान है। मुझसे बात करते समय वे कुछ चिन्ताग्रस्त दिखाई पड़ते थे परन्तु फिर अपनी प्रतिज्ञा को स्मरण करके अपना वही प्रचण्ड रूप धारण कर लेते थे। वे अपनी प्रतिज्ञा पर मेरे के समान अचल हैं।

विष्णु—परन्तु यह कोई प्रशंसनीय कार्य नहीं। क्या इस प्रतिज्ञापालन से अधर्म-वृद्धि नहीं होगी ? यदि इस प्रतिज्ञा के फलस्वरूप राक्षसों की विजय हुई तो राक्षसों के अत्याचार से संसार में अधर्म ही अधर्म फैल जायगा। तब क्या इस अधर्म का उत्तरदायित्व असुर-गुरु शुक्राचार्य पर न होगा ?

बृहस्पति—राक्षसों ने उनसे जीवन-दान माँगा और उन्हें दे दिया । यदि अपने स्थान पर वे यह न करते तो आदर्श ब्राह्मणत्व के पद से गिर जाते ।

वृष्णा—क्या आचार्य शुक्र को अब भी अपनी प्रतिज्ञा के लिए कुछ खेद नहीं है ?

बृहस्पति—यह प्रश्न नितान्त व्यर्थ है । अब यदि वे राक्षसों को न भी जीवित करना चाहें तो भी उन्हें करना पड़ेगा और वे अवश्य करेंगे । वे प्रतिज्ञा से बढ़कर और किसी भी वस्तु को महत्त्व नहीं देते और देना भी नहीं चाहिए ।

इन्द्र—अब आप ही बतलाइए कि ऐसी स्थिति में हम लोगों को विजय और रक्षा के लिए क्या उपाय करना चाहिए । हम लोग तो आपके ही आश्रित हैं ।

विष्णु—क्या हम सब निराश ही हो जायें ? क्या हम अमरों की मृत्यु इन राक्षसों के हाथ ही होगी ?

बृहस्पति—देववर्ग, निराश न हो । इतनी व्याकुलता से कार्य कैसे होगा । अच्छा हो यदि तुममें से कोई आचार्य शुक्र के पास जाकर कुछ समय उनके पास रहकर उन्हें प्रसन्न करे । जिस प्रकार राक्षसों ने उन्हें प्रसन्न करके इतना बड़ा लाभ उठाया उसी प्रकार तुम लोग भी उनसे लाभ उठा सकते हो ।

इन्द्र—गुरुदेव, मैं कुछ समझ न सका । जब शुक्राचार्यजी ने राक्षसों को सहायता का वचन दे दिया है तो वह कोई ऐसा कार्य क्यों करेंगे जिससे देवताओं का कुछ लाभ हो सके ।

बृहस्पति—देवराज, मुझे उनसे बहुत आशा है । मेरे अधिक प्रार्थना करने पर उन्होंने अन्त में यह कहा था कि मैं राक्षसों को सहायता का वचन दे चुका हूँ और सहायता अवश्य करूँगा । इसके अतिरिक्त देवोपयोगी कोई और बात हो तो मैं विचार करूँगा । अतः

मुझे आचार्य शुक्रजी से पूर्ण आशा है कि वे देवताओं से प्रसन्न किये जाने पर उनको भी कुछ कम लाभ नहीं पहुँचा सकते ।

ब्रह्मा—गुरुदेव, मेरा विचार है कि किसी को जाकर शुक्राचार्य से विद्योपार्जन करना चाहिए । ब्राह्मण होने के नाते वे विद्यादान से किसी को वञ्चित नहीं कर सकते । उनको प्रसन्न करके मृत-सञ्जीविनी विद्या सीख ली जाय । मैं यही उचित समझता हूँ ।

बृहस्पति—परन्तु इस विषय में उन्हें धोखा नहीं दिया जा सकता । उनसे स्पष्ट ही कहना होगा कि मैं यह विद्या सीखना चाहता हूँ । यदि वे उचित समझेंगे, सिखला देंगे; अनुचित समझेंगे नहीं सिखलावेंगे ।

विष्णु—तो वे अनुचित ही समझेंगे और नहीं सिखलावेंगे ।

शङ्कर—नहीं सिखलावेंगे तो कोई बात नहीं । हम लोगों को प्रयत्न तो करना ही चाहिए ।

बृहस्पति—हाँ ठीक है । तुम लोगों में से आचार्य शुक्र को प्रसन्न करने और सञ्जीविनी विद्या को सीखने के लिए जाने को कौन उद्यत है ? (कुछ क्षण ठहरकर) मैं किसी में साहस नहीं देखता । जाने को कोई उद्यत नहीं होता । क्या तुम लोगों में कोई इस योग्य नहीं कि राज्ञों में रहकर आचार्य शुक्र के पास विद्योपार्जन कर सके ?

विष्णु—गुरुदेव, हम सब मरने-मारने को प्रस्तुत हैं—युद्धभूमि में भी और राज्ञों के कोट में भी जाकर; परन्तु प्रश्न यह है कि क्या आचार्य शुक्र हम लोगों को सञ्जीविनी विद्या सिखला देंगे और यदि वे सिखला भी देंगे तो जब तक इस प्रश्न का निर्णय किया जायगा, राज्ञस अपनी विजय-पताका फहरा चुकेंगे ।

बृहस्पति—तुम लोगों को आचार्य शुक्र पर सन्देह करने का कोई न कोई कारण अवश्य मिल जाता है । इस प्रकार सन्देहास्पद साधनों से कार्य पूर्ण नहीं होता ।

इन्द्र—क्षमा कीजिए महाराज मैं कल तक इसके लिए कुछ प्रबन्ध करूँगा और यदि न कर सका तो जो आप उचित समझें, करें।

बृहस्पति—अच्छी बात है।

(बृहस्पति का प्रस्थान और सभा-विसर्जन)

पट-परिवर्तन

दृश्य ५

(देवताओं और ऋषियों की संयुक्त युद्ध-समिति की बैठक)

शङ्कर—हम लोगों में से किसी को असुरों में रहकर आचार्य शुक्र से विद्योपार्जन करना चाहिए। इस कार्य के लिए किसी ऐसे व्यक्ति को जाना चाहिए जिससे राक्षस परिचित न हों। वही इस कार्य में सफलमनोरथ हो सकेगा। यदि हम लोगों में से कोई इस कार्य के लिए जाय तो उसे छद्म वेष में जाना पड़ेगा और उस रूप में भी सफलता की अधिक सम्भावना नहीं। क्योंकि राक्षस इस कार्य में देवताओं से अधिक सिद्धहस्त हैं अतः इस कार्य के लिए बहुत बड़ी सावधानी अपेक्षित होगी।

विष्णु—यदि यह सब अभी निर्णय नहीं हो जाता तो गुरुजी के अप्रसन्न होने की सम्भावना है। मुझे तो छलिया कहा ही जाता है। यदि आप लोग कहें तो मैं ही चला जाऊँ।

ब्रह्मा—नहीं, महाराज, आप न जाइए। आपका छद्म वेष आचार्य शुक्र से न छिप सकेगा।

इन्द्र—परन्तु मेरी समझ से कार्य की सफलता हम लोगों के जाने से कदाचित् हो नहीं सकती।

(कच सभा में सबको प्रणाम करके खड़ा हो जाता है)

कच—देवदेव, मैंने स्थिति पर विचार कर लिया है और कार्य की महत्ता पर भी मेरा विशेष ध्यान है। मैंने निश्चय कर लिया है कि पितृ-तुल्य आचार्य के पास मैं जाऊँगा और एक सच्चे शिष्य तथा सेवक की भाँति उनकी सेवा करूँगा। मैं इसी वेष में जाकर विद्योपार्जन करूँगा। यदि राज्ञेयों ने मुझे मार भी डाला तो मैं इस पुण्य-कार्य के लिए मर जाने के कारण स्वयं को कृतार्थ समझूँगा। यह जीवन उपकार के लिए ही बना है। परोपकार ही जीवन की सबसे बड़ी शोभा है। उपकार का ऋण कभी लौटाया नहीं जा सकता। मैंने निश्चय कर लिया है कि इस सम्बन्ध में आपकी सेवा अवश्य करके स्वयं को भाग्यशाली समझूँगा। समाज-हित के लिए व्यक्ति का अहित कोई स्थान नहीं रखता।

इन्द्र—नहीं, कच ! ऐसा नहीं हो सकता। यदि देवगुरु यह जान लेंगे तो अपने प्रति एक षड्यन्त्र समझेंगे। इस युद्ध में हम लोग अपने पराजय सहन कर सकते हैं परन्तु तुम्हारा वहाँ जाना स्वीकार नहीं कर सकते। संसार हमें क्या कहेगा यदि दानवों द्वारा तुम्हारा कुछ भी अपकार हो गया।

कच—महानुभाव, आप लोग इस विषय में कुछ चिन्ता न करें। मैं स्वयं जाकर पिताजी से अपना निश्चय निवेदन करूँगा। मैंने यह निश्चय किसी के दबाव में आकर नहीं किया। अतः पिताजी इसके लिए आप देवताओं को उत्तरदायी न ठहरावेंगे। वे मेरी प्रतिज्ञा को सुनकर प्रसन्न और सन्तुष्ट ही होंगे।

विष्णु—हम लोग गुरुजी से यह समाचार कैसे कह सकते हैं। हमें तो कहने का साहस ही नहीं होता।

कच—आपमें से किसी को भी पिताजी से कहने की आवश्यकता नहीं। मैं स्वयं जाकर पिताजी को अपने निश्चय की सूचना दे दूँगा। आप मेरे निश्चय को दृढ़ समझें और अब इसके लिए अधिक विवाद न बढ़ाये।

देववर्ग—(लज्जा से) हम लोगों का मस्तक ऊँचा नहीं होता ।

कच—इसमें लज्जा की कोई बात नहीं । मेरे जाने से सभी समस्यायें सुलभ जाती हैं । आचार्य शुक्रजी से विद्या सीखने के लिए मैं ही उपयुक्ततम शिष्य हो सकता हूँ । अतः आप लोगों को इस सम्बन्ध में कुछ चिन्ता नहीं करनी चाहिए । अब मुझे जाने की आज्ञा दीजिए । प्रणाम ।

(कच का प्रस्थान)

इन्द्र—बड़ा अनर्थ हो गया । कच के इस निश्चय को कहीं गुरुदेव हम लोगों का षड्यन्त्र न समझें ।

ब्रह्मा—नहीं, गुरुदेव इसे बुरा न मानेंगे । वे तो इसके लिए कुछ उपाय खोज ही रहे थे और अब उपाय सरल व सुगम मिल गया ।

विष्णु—मैं भी यही विचार कर रहा हूँ कि कहीं गुरुदेव यह न सोचें कि बड़े-बड़े देवों ने अपनी जान बचाकर मेरे एकलौते पुत्र कच को आपत्ति में डाल दिया ।

शङ्कर—अच्छा तो यह हो कि कच के साथ ही हम लोग भी चलकर गुरुदेव से मिलें और स्थिति उनके सम्मुख स्पष्ट रूप से रख दी जाय । कच को बुलवा लीजिए । हम सब लोग मिलकर एक साथ ही गुरुदेव के पास चलेंगे ।

(राजा इन्द्र का दूत भेजकर कच को वापस बुला लेना)

कच—देवेन्द्र, क्या आज्ञा है ?

इन्द्र—कच, हम लोगों ने यह निश्चय किया है कि हम सब लोग मिलकर ही गुरुदेव के दर्शन करेंगे । उन्हें आज के दिन इस सम्बन्ध में सूचना भी देनी थी ।

कच—जो आज्ञा । चलिए ।

(सब का प्रस्थान)

पट-परिवर्तन

दृश्य ६

बृहस्पति का निवास-स्थान

बृहस्पति—कोई है ? शिष्य—

(एक शिष्य का प्रवेश)

शिष्य—गुरुदेव, मैं उपस्थित हूँ । आशा ।

बृहस्पति—कच कहाँ है ? उसे बुला लाओ ।

शिष्य—बहुत अच्छा, महाराज !

(प्रस्थान)

(शिष्य थोड़ी देर के उपरान्त आता है)

शिष्य—गुरुदेव, कच देववर्ग के साथ यहीं आ रहे हैं । मुझे जाते समय मार्ग में ही मिल गये थे ।

बृहस्पति—अच्छा, तुम जाओ और अपने कार्य में संलग्न हो ।

(शिष्य का प्रस्थान)

[कच के सहित देवताओं का प्रवेश, सब प्रणाम करके दया
स्थान बैठ जाते हैं]

बृहस्पति—युद्ध में विजयी हो । कहो, जाने के लिए तुम लोगों ने क्या निश्चय किया । राज्ञों में रहकर, आचार्य शुक्र का शिष्यत्व स्वीकार करके विद्योपार्जन के हेतु जाने के लिए तुममें से कौन उद्यत है !

कच—(उठकर) पिताजी, मैंने यह निश्चय किया है कि इस कार्य के लिए मैं जाऊँगा । आप मुझे सहर्ष आशा दे दें । इस कार्य में विलम्ब होने से लाभ ही क्या !

बृहस्पति—पुत्र, सफलमनोरथ हो । क्या तुम सत्य ही आचार्य शुक्र के पास विद्योपार्जन के लिए जाओगे ? क्या तुम यह जानते हो कि वे राज्ञों के गुरु हैं और उनके यहाँ जाकर तुम्हें राज्ञों के मध्य में

रहना होगा ? क्या तुमने अपना निश्चय इन बातों पर विचार करके किया है ?

कच—हाँ पिताजी, मैंने यह सब सोच लिया है। मैं जानता हूँ कि आचार्य शुक्र से विद्याध्ययन करने में राज्ञों से भय है। मुझे किसी बात का सन्देह नहीं। ब्राह्मण-पुत्र होने के नाते मेरा यह कर्त्तव्य हो जाता है कि विद्योपार्जन के लिए अधिक से अधिक कष्ट सहूँ। फलप्राप्ति की आशा रखनेवाले भयावह साधनों से भयभीत होकर उससे हाथ नहीं खींच लेते। मेरा वहाँ जाना प्रत्येक दृष्टिकोण से उचित है। अतः आप मुझे जाने की शीघ्र अनुमति दे दें।

बृहस्पति—(अत्यन्त प्रसन्न होकर) कच, तुम धन्य हो। तुम-सा पुत्र पाकर मैं भी अपने को भाग्यवान् समझता हूँ। पिता अपने मुख से अपने पुत्र के सम्मुख उसकी प्रशंसा नहीं करता परन्तु मैं तुम्हारे इस साहस से इतना आनन्दित हो उठा हूँ कि तुम्हारे सम्मुख ही तुम्हारी प्रशंसा कर रहा हूँ। तुम्हारे जाने से मेरी सभी चिन्तायें दूर हो जायँगी।

शङ्कर—क्या आप कच को एकाकी ही राज्ञों के बीच में भेज देंगे ? ऐसा करना तो हम लोगों के लिए और विशेषकर कच के लिए बहुत ही अहितकर होगा।

बृहस्पति—अब इसमें अधिक सोच-विचार की आवश्यकता नहीं। इस कार्य के लिए कच ही सबसे अधिक उपयुक्त है। मेरा ध्यान पहले कच की ओर गया ही नहीं था अन्यथा आप सब लोगों को व्यर्थ इतना सोच-विचार करने का कष्ट न होता। (कच से) पुत्र ! तुम आचार्य शुक्र के यहाँ जाने को प्रस्तुत हो ?

कच—हाँ पिताजी, मैं आपके आज्ञानुसार देवताओं का प्रिय करने के लिए आचार्य शुक्र के पास अवश्य जाऊँगा। आप आशीर्वाद दें कि मैं अपने उद्देश्य में सफल हो सकूँ।

बृहस्पति—कच, पुत्र ! मेरा आशीर्वाद है कि तुम अपने उद्योग में सफल होकर, सकुशल लौटकर हम लोगों को आनन्दित करो ।

[कच पिता के चरण स्पर्श करके आचार्य शुक्र के पास तथा देवता अपने-अपने निवासस्थान को जाने को उद्यत होते हैं ।]

पट-परिवर्तन

दृश्य ७

शुक्राचार्य का निवास-स्थान

(शुक्राचार्य तथा देवयानी)

देवयानी—पिताजी, अब देवासुर-संग्राम का क्या समाचार है ?

शुक्राचार्य—समाचार बहुत अच्छा है । असुर विजयी हो रहे हैं और देवताओं की पराजय हो रही है ।

देवयानी—जब आप ही राज्ञों का आचार्यत्व कर रहे हैं तब भला वे विजयी क्यों न होंगे ।

शुक्राचार्य—देवयानी, जो तुम कहती हो वही इस समय समस्त संसार कह रहा है । देवगुरु बृहस्पति भी मुझसे मिलने आये थे । वे भी मुझसे यही कह रहे थे परन्तु अब मैं कर ही क्या सकता हूँ । मैं वचनबद्ध हूँ ।

देवयानी—पिताजी, आप उस परिस्थिति पर पुनः विचार करें जब राज्ञस विजयी होकर हमारी जाति और संस्कृति पर आघात करना आरम्भ कर देंगे । क्या हम सब उस समय वर्णरक्षा कर सकेंगे ? अतः जाति और धर्म-रक्षार्थ आप राज्ञों का साथ अब भी छोड़ दें ।

(द्वारपाल का प्रवेश)

द्वारपाल—आचार्य, एक ब्राह्मण युवक बहुत देर से द्वार पर खड़ा-खड़ा दुराग्रह कर रहा है और आपसे मिलना चाहता है। मैं तो उससे कह चुका हूँ कि आप इस समय किसी प्रकार नहीं मिल सकते परन्तु वह टलता ही नहीं।

देवयानी—(द्वारपाल से) यह तुमने कैसे कह दिया कि पिताजी उससे नहीं मिलेंगे ! हमारे पिताजी की कोई भी बात गुप्त नहीं रहती। यहाँ सभी आनेवालों का स्वागत होता है। यदि कोई राज्ञस आता तो क्या तुम उससे भी इसी प्रकार लौट जाने को कहते ? कदापि नहीं। वह ब्राह्मण है इसी कारण, बिना पिताजी की आज्ञा के ही उसे लौटा देना चाहते थे। यदि तुम्हें पूछना ही था तो पहले ही आकर क्यों नहीं पूछा ! जब वह मिलने के लिए आग्रह कर रहा है और आग्रह करते इतना समय भी हो चुका है, तब तुम पूछने आये हो। ब्राह्मण का अनादर कहीं नहीं होता। फिर ब्राह्मण का अनादर ब्राह्मण के यहाँ ! असम्भव ! जाओ, उससे कह दो कि पिताजी उससे अवश्य मिलेंगे और अभी।

द्वारपाल—(आचार्य शुक्र से) आचार्य जी ! तो उससे क्या कह दूँ ?
देवयानी—मैं क्या कहती हूँ ! सुना नहीं।

शुक्राचार्य—जाओ, अभी बुला लाओ। देवयानी ठीक कहती है। मैं राज्ञसों का पक्ष लेता हूँ परन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि ब्राह्मणों से भेंट ही न करूँ।

(द्वारपाल बाहर जाकर कच के साथ लेकर लौटता है)

कच—(नत होकर) देव, मैं महर्षि अङ्गिरा का पौत्र—आचार्य बृहस्पति का पुत्र—कच आपके श्रीचरणों में प्रणाम करता हूँ। (देवयानी की ओर देखकर) देवि, मैं आपको भी प्रणाम करता हूँ।

शुक्राचार्य—पुत्र, चिरञ्जीव हो। तुम्हारा क्या नाम है, कच ! आचार्य बृहस्पति के पुत्र ! यहाँ तुम्हारे आने का कारण

कच—हाँ महाराज, मैं आचार्य बृहस्पति का पुत्र आपके पास विद्याध्ययन के निमित्त आया हूँ। आपका शिष्य बनकर मैं आपकी सेवा करना चाहता हूँ।

शुक्राचार्य—(कुछ विचार करके) कुछ समझ में नहीं आता।

देवयानी—पिताजी, आप क्या विचारने लगे।

शुक्राचार्य—विचारने की कोई विशेष बात तो है नहीं। देवगुरु ने अपने पुत्र को मेरे पास विद्याध्ययन के लिए भेजा है। वे मेरे गुरुभाई हैं अतः मैं उनके पुत्र को अपने पुत्र की ही भाँति रखूँगा। विचार मैं यह रहा था कि ऐसी स्थिति में जब कि देवासुर-संग्राम ने ऐसा भीषण रूप धारण कर लिया हो, कच का यहाँ रहकर विद्याध्ययन करना शङ्का से रिक्त नहीं।

देवयानी—और शङ्का इस बात की कि राज्ञस आपसे अप्रसन्न हो जायँगे। वे आप रप सन्देह करेंगे। पिताजी, आपकी इस शङ्का को मैं कुछ समझ नहीं पाती।

शुक्राचार्य—(हँसकर) देवयानी, तुम सदैव नासमझी की बातें किया करती हो। मैं राज्ञसों से डर गया! तुम मुझे नहीं मालूम क्या समझती हो। आज देवों और असुरों में कोई ऐसा नहीं है जो मेरे सामने आँखें उठाकर देख सके और राज्ञस तो मेरी ही कृपा पर जीवित हैं।

देवयानी—तो फिर शङ्का किस बात की पिताजी!

शुक्राचार्य—अच्छा, वह भी सुनो। कच यद्यपि मेरे मित्र आचार्य बृहस्पति का पुत्र है, मैं इसे अपने पुत्र के समान रखूँगा भी परन्तु है तो यह देवगुरु का पुत्र ही। राज्ञस इसे सदैव सन्देह की दृष्टि से देखेंगे और इसे कष्ट पहुँचाने की चेष्ट करेंगे। क्या तुमने कभी इस बात को सोचा था! (कच से) बेटा! तुम्हें यहाँ बहुत ही सावधानी से रहना पड़ेगा। तुम्हें राज्ञसों से पृथक् रहकर केवल अध्ययन में ही समय व्यतीत करना होगा। मेरा समय और

ध्यान तो इस समय युद्ध में लगा हुआ है। जब तक युद्ध होगा मैं अन्य किसी बात की ओर समुचित रूप से ध्यान न दे सकूँगा। मेरे यहाँ यह (देवयानी की ओर इङ्कित करके) मेरी पुत्री देवयानी है। किसी प्रकार की आवश्यकता अथवा कष्ट होने पर इसे सूचित कर दिया करना। यह मुझे बतला दिया करेगी और मेरे उपस्थित रहने पर जो कष्ट हो वह मुझसे कहना।

कच—गुरुदेव, मैं अक्षरशः आपकी आज्ञा का पालन करके अपने को कृतकृत्य समझूँगा।

शुक्राचार्य—मेरी प्राणों से प्यारी पुत्री देवयानी यहाँ की स्थिति से भली भाँति परिचित है। वह तुम्हें यहाँ की स्थिति से परिचित कराती रहेगी। तुम्हारा शील और स्वभाव भी बहुत कुछ उससे मिलता-सा प्रतीत होता है। तुम निःसङ्कोच भाव से उसे अपने कष्ट बतलाते रहना। वह तुम्हारी सब प्रकार से देख-रेख रखेगी। तुम यहाँ के वातावरण से अनभिज्ञ हो, अतः मैं तुम्हें इस प्रकार का आदेश देना उचित समझता हूँ।

कच—हाँ देव, मैं बहन देवयानी से सभी कुछ बतलाता रहूँगा।

शुक्राचार्य—अच्छा, जाओ, मैं आज्ञा करता हूँ कि तुम एक सफल विद्यार्थी होगे।

(कच प्रणाम करके जाने को प्रस्तुत होता है)

देवयानी—कच ! ठहरो, तुम कहाँ जा रहे हो ?

कच—बहन, मैं कहीं जाकर अपने ठहरने का प्रबन्ध करूँगा।

देवयानी—(शुक्राचार्य से) पिताजी, देखिए तो ये अपने ठहरने का प्रबन्ध करने जा रहे हैं। कदाचित् इन्हें यह ध्यान नहीं कि यह स्थान चारों ओर से राज्ञों से घिरा है। बाहर निकले नहीं कि राज्ञों की कुदृष्टि इन पर पड़ी नहीं। ये राज्ञों के स्वभाव से भी परिचित नहीं प्रतीत होते। राज्ञस कितने ईर्ष्यालु होते हैं, यह भी इन्हें ज्ञात नहीं। राज्ञों और ब्राह्मणों में राहु और सूर्य की

भाँति विरोध रहता है। अतः मेरी समझ से कच का अन्यत्र रहना उचित न होगा। अच्छा तो यह हो कि ये हम लोगों के साथ इसी आश्रम में रहें। हम लोगों से अलग रहने पर राज्ञस इनको न जाने क्या-क्या हानि पहुँचावे।

शुक्राचार्य—तुम सत्य कह रही हो। (कच से) कच, तुम्हारे लिए यही हितकर होगा कि तुम हमारे निवास-स्थान में हम लोगों के साथ ही रहो।

कच—श्रीमान् जी की जो आज्ञा।

शुक्राचार्य—देवयानी, तुम कच के लिए भोजनादि का समुचित प्रबन्ध करा देना। मैं वृषपर्वा के यहाँ जा रहा हूँ। मुझे आगामी युद्ध के लिए उनको कुछ आवश्यक परामर्श देना है।

देवयानी—पिताजी, आप कच के सम्बन्ध में कुछ चिन्ता न करें। मैं इनके लिए समुचित प्रबन्ध करा दूँगी।

शुक्राचार्य का प्रस्थान

देवयानी—देखो, कच, यह अपना ही घर है। यहाँ तुम्हें किसी बात के लिए सङ्कोच नहीं करना चाहिए। पिताजी तुम पर बहुत प्रसन्न हैं। परन्तु तुम्हें यहाँ राज्ञसें से सावधान होकर रहना चाहिए अन्यथा ये तुम्हें बहुत ही दुखी करेंगे। चलो, तुम्हारे ठहरने और भोजनादि का प्रबन्ध करा दें।

दोनों का प्रस्थान

पट-परिवर्तन

दृश्य ८

असुर-राज वृषपर्वा का दरबार

वृषपर्वा—मुझे आश्चर्य होता है कि ये देवता लोग स्वयं सन्धि का प्रस्ताव उपस्थित कर रहे हैं और युद्ध को स्थगित करा देना चाहते हैं।

अजक—भैया, अवश्य दाल में कुछ काला है। इसमें भी इन लोगों की कुछ चाल ही होगी।

वृषपर्वा—अच्छा, गुप्तचर को बुलाओ। सम्भवतः वह कोई नवीन समाचार लाया हो।

(एक राक्षस बाहर जाकर गुप्तचर को साथ लेकर वापस आता है)

गुप्तचर—(प्रणाम करके) दास उपस्थित है।

वृषपर्वा—चर, कोई नवीन समाचार हो तो कहो।

गुप्तचर—जो बृहस्पति के पुत्र कच शुक्राचार्यजी के पास मृत-सञ्जीविनी विद्या सीखने को आये हैं, वे सञ्जीविनी सीखने के उपरान्त देवताओं के भी मृत सैनिकों को जीवित कर दिया करेंगे और तब तक के लिए वे लोग इस युद्ध को स्थगित करा देना चाहते हैं।

वृषपर्वा—तब तो बड़ा अनर्थ हो जायगा।

अदर—राजन्, मैंने भी सुना है कि कच नाम का एक नवयुवक ब्राह्मण गुरुदेव के पास आ चुका है और वे उसे अपना शिष्य भी बना चुके हैं। सम्भवतः वह सञ्जीविनी विद्या सीखने के लिए ही आया होगा।

कपट—हम लोगों को उसे बहुत ही दुखी करना चाहिए। दुखी होकर वह भाग जायगा। यदि ऐसी दशा में भी वह पत्थर की लकीर बना रहा तो उस लकीर को मिटाने के लिए पत्थर को ही तोड़ना होगा। न होगा बाँस न बजेगी बाँसुरी।

वृषपर्वा—तुम लोगों का विचार बड़ा उत्तम है। परन्तु यह बात अवश्य ध्यान में रखनी चाहिए कि यदि कहीं गुरुकन्या देवयानी की उस पर कृपा-दृष्टि हुई और यदि ऐसी स्थिति में उसका कुछ अनिष्ट हुआ तो फिर उसे तथा गुरुजी को सावधान करना दुष्कर ही नहीं असम्भव होगा।

अश्वघोष—फिर जो कुछ होगा देखा जायगा। पहले उससे तो निपट लिया जाय।

वृषपर्वा—अच्छा, जाओ, इस सम्बन्ध में जो उचित समझो करो । परन्तु कार्य में बड़ी ही सावधानी रखनी होगी !

अश्वघ्रीव—हाँ महाराज, अवश्य । असावधानी से कोई भी कार्य सफल नहीं होता ।

वृषपर्वा—अच्छा, जाओ और अपने कार्य में संलग्न हो ।

सभा-विसर्जन

पट परिवर्तन

दृश्य ९

शुक्राचार्य का निवास-स्थान

(कच एकाकी बैठे हैं)

कच—मुझे यहाँ आये बहुत समय हो चुका है । परन्तु जिस कार्य के लिए मैं आया था वह अभी तक न हो सका । देवता मेरी वाट देख रहे होंगे । इधर राक्षसों से मेरा वैमनस्य भी प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है । वे मुझसे निष्कारण कलह किया करते हैं । आचार्य और आचार्य-कन्या देवयानी दोनों मुझसे प्रसन्न हैं । परन्तु मैं उनसे मृतसञ्जीविनी विद्या सीखनेवाली बात किस प्रकार कहूँ । (कुछ विचार कर) अच्छा, आज अवसर मिलने पर मैं देवयानी से अवश्य कहूँगा । बहुत सम्भव है कि वह मेरी अभिलाषा को गुरुजी से प्रकट करके मेरे मनोरथ को सफल बनाने का कारण बन सके ।

(देवयानी का प्रवेश)

देवयानी—कच, तुम अकेले बैठे क्या कर रहे हो ? क्या तुम्हें अकेले रहना बहुत अच्छा लगता है ? सच बताओ तुम क्या विचार कर रहे थे ।

कच—मैं कुछ भी विचार कर रहा हूँ, तुम सुनकर क्या करोगी ?

देवयानी—यदि मुझसे छिपानेवाली बात है तो उसे अवश्य छिपा लीजिए ।

मैं प्रकट करने के लिए नहीं कहूँगी । मैं तो इसलिए पूछ रही थी कि कदाचित् मैं तुम्हारी कुछ सहायता कर सकती ।

कच—देवयानी, अप्रसन्न न हो । बैठ जाओ और शान्त होकर मेरी बात सुनो । मैं यह सोच रहा था कि इस देवासुर-संग्राम में आचार्य शुक्र राज्ञों की सहायता कर रहे हैं । एक ब्राह्मण के हाथों ही आर्य-संस्कृति मिटाई जा रही है । मेरे पिताजी के बहुत प्रार्थना करने पर भी उन्होंने राज्ञों का साथ छोड़ना स्वीकार नहीं किया । वे अपनी मृतसञ्जीविनी विद्या से मृत राज्ञों को जीवित कर दिया करते हैं । ऐसी स्थिति में असुरों की विजय अवश्यंभावी है । मेरे पिताजी के बहुत प्रार्थना करने पर आचार्यजी ने अन्त में इतना अवश्य कहा कि “मैं राज्ञों की सहायता अवश्य करूँगा । इसके अतिरिक्त आप जो चाहते हों बतलायें, मैं विचार करूँगा ।” इन शब्दों से मेरे पिताजी को बहुत आशा हुई और उन्होंने मुझे आचार्यजी के पास विद्याध्ययन के लिए भेजा । उन्हें और मुझे आशा थी कि कदाचित् आचार्य शुक्र जी को संतुष्ट करके मैं सञ्जीविनी प्राप्त कर सकूँ परन्तु सीखने की बात ही क्या, मैं अभी तक अपने हृदय की बात ही उन पर प्रकट न कर सका । राज्ञों से मेरा वैनस्य प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है परन्तु मुझे राज्ञों से मारे जाने का भय कदापि नहीं । चिन्ता तो इस बात की है कि मेरी प्रतीक्षा करते हुए मेरे पिताजी और देवेन्द्र इन्द्र की क्या दशा होगी । इसी बीच में यदि राज्ञस विजयी हो गये और आर्य संस्कृति पर आघात पहुँचा, तो मेरा आना व्यर्थ हुआ ही समझो ।

देवयानी—कच, तुमने मुझसे प्रथम ही यह क्यों नहीं बतलाया ?

कच—हाँ, सङ्कोच के कारण न बतला सका । मैं यहाँ केवल मृत-सञ्जीविनी विद्या सीखने के लिए ही आया था ।

देवयानी—बस, इतनी-सी बात की चिन्ता है ! पिताजी के आते ही मैं उनसे इस सम्बन्ध में बात करूँगी और सञ्जीविनी विद्या सिखाने के लिए प्रार्थना करूँगी ।

कच—परन्तु, देवयानी ! जितना सरल तुम समझती हो उतनी सरल यह बात नहीं । वे इस बात के लिए तुम्हारे आग्रह की ओर भी ध्यान न देंगे ।

देवयानी—नहीं, कच, पिताजी ने मेरी कोई बात अभी तक नहीं टाली और इस के लिए भी वे मेरी बात न टालेंगे ।

कच—तो फिर देवयानी, तुमने इस युद्ध में उन्हें राज्ञों का पक्ष न लेने के लिए क्यों नहीं कहा ? क्या तुमने आचार्य जी से यह आग्रह किया था कि वे राज्ञों का साथ न दें ?

देवयानी—हाँ, मैंने आग्रह किया था और अवश्य किया था, परन्तु उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा के सम्मुख मेरे आग्रह की ओर ध्यान नहीं दिया । मेरे आग्रह के कारण वे धर्म-सङ्कट में पड़ गये थे । परन्तु इस सम्बन्ध में उनकी कोई ऐसी प्रतिज्ञा नहीं है, अतः मेरा आग्रह और प्रार्थना निरर्थक न जायगी ।

(शुक्राचार्य का अचानक प्रवेश)

शुक्राचार्य—देवयानी, कहो कच कुशल से तो हैं ? इन्हें किसी बात का कष्ट तो नहीं ?

देवयानी—पिताजी, मैं इन्हें कई दिनों से अन्यमनस्क देख रही हूँ । आज ये मुझे अधिक खिन्न दिखाई पड़े । इस समय मैं इनसे इसका कारण पूछ रही थी । इन्होंने बहुत सङ्कोच से अपनी हादिक व्यथा का वर्णन किया । ये यहाँ आपकी सेवा में रहकर मृत-सञ्जीविनी विद्या सीखने आये थे परन्तु इतने दिनों तक इन्होंने आपसे अथवा मुझसे कुछ नहीं कहा । राज्ञस इन्हें प्रतिपल छेड़ा करते हैं, दुखी किया करते हैं । वे आपके आश्रम में भी इन्हें शान्तिपूर्वक नहीं रहने देते ।

शुक्राचार्य—(कच से) कच, तुम्हें राज्ञस दुखी करते रहते हैं और तुमने इसके लिए मुझसे कभी नहीं कहा—राज्ञसराज वृषपर्वा को भी उलाहना नहीं दिया । मैं तो युद्ध में संलग्न रहने के कारण तुम्हारी कुशल-क्षेम भी न पूछ सका ।

कच—मैं सचमुच आपसे अथवा बहन देवयानी से सङ्कोचवश कुछ भी न कह सका । रही वृषपर्वा से उलाहना देने की बात । तो मैं उनसे इस कारण नहीं कह सकता कि राज्ञस मुझे उन्हीं के सङ्केत से दुखी करते हैं—मुझे ऐसा प्रतीत होता है ।

शुक्राचार्य—कच, मैं सब समझ गया । जाओ, अपना कार्य करो ।
देवयानी—सञ्जीविनी विद्या को सिखाने के सम्बन्ध में आपने इन्हें कुछ आश्वासन नहीं दिया ।

शुक्राचार्य—देवयानी, इस समय त्रैलोक्य में मेरे अतिरिक्त किसी अन्य को यह विद्या प्राप्त नहीं । मैं घोर तप करने पर इसे प्राप्त कर सका था । कच की सेवाओं तथा सद्गुणवहारों से मैं प्रसन्न अवश्य हूँ परन्तु सञ्जीविनी विद्या सिखाने का अभी उपयुक्त अवसर नहीं ।

देवयानी—तो पिताजी, क्या इसका यह अर्थ लिया जाय कि आप अभी नहीं, कुछ समय उपरान्त कच को यह विद्या सिखला देंगे अथवा यह विद्या चिरकाल तक केवल आप ही में सीमित रहेगी ?

शुक्राचार्य—पुत्री, मैं यह विद्या कच को अवश्य सिखला देना चाहता हूँ परन्तु भय इस बात का है कि कच इस विद्या को सीखकर इस युद्ध में मेरे ही विरुद्ध इसका प्रयोग करेगा और राज्ञसों को विजयी बनानेवा लीमेरी प्रतिज्ञा पूर्ण न हो सकेगी ।

देवयानी—तो पिताजी, क्या आप मृत राज्ञसों का जीवित होना उचित समझते हैं और मृत देवों तथा ब्राह्मणों का जीवित होना नहीं ?

शुक्राचार्य—क्या इस सम्बन्ध में तुम्हें मेरी प्रतिज्ञा स्मरण नहीं ?

देवयानी—हाँ, मुझे आपकी दोनों प्रतिज्ञाओं का स्मरण हैं। आपने आचार्य बृहस्पति से भी तो कुछ कहा था। कच उसी दूसरी प्रतिज्ञा का स्मरण कराने के लिए यहाँ आये हैं।

आचार्य—हाँ, मुझे स्मरण है। मैं भूलता नहीं। तुम्हारे आग्रह और कच की सेवाओं के कारण मैं उसको यह विद्या अवश्य सिखला दूँगा।

देवयानी—(कच से) कच, तुमने पिताजी की बातों को सुन लिया। अब तुम्हारे अन्यमनस्क होने का कुछ कारण नहीं।

शुक्राचार्य—(कच से) हाँ पुत्र, तुम कुछ समय तक यहाँ और रहो और इस घर को अपना ही घर समझो। (देवयानी से) देवयानी, मैं जा रहा हूँ। तुम कच के लिए उचित प्रबन्ध करा देना और यह भी देखती रहना कि इसको राक्षस किसी प्रकार का कष्ट न पहुँचा सके।

देवयानी—पिताजी, सब कार्य आपके इच्छानुकूल ही होंगे।

शुक्राचार्य का प्रस्थान
पटाक्षेप



द्वितीय अङ्क

दृश्य १

असुर-राज वृषपर्व की वाटिका

(कच का फूल चुनने के लिए वाटिका में प्रवेश)

माली—क्यों जी, तुम कौन हो ! एक दिन, दो दिन, कितने दिन हो गये, तुम निरन्तर इसी वाटिका को उजाड़ने के लिए आ जाते हो !

कच—मैं महर्षि शुक्राचार्यजी का शिष्य कच हूँ । गुरुजी के पूजार्थ फूल लेने आया करता था और आज भी इसी लिए आया हूँ । मैं वाटिका उजाड़ने के लिए नहीं आता हूँ । वाटिका के सुन्दर पुष्प पूजार्थ ही बने हैं । यदि इनका उपयोग सत्कार्य में नहीं होगा तो ये एक-दो दिन में मुरझाकर और गिरकर मिट्टी में ही मिल जायेंगे ।

माली—चुप रहो । जहाँ तुम्हारे बाप ने वाटिका लगाई हो वहाँ जाकर फूलों का जीवन सार्थक करो ।

कच—कोई अप्रसन्न होने की बात नहीं । अब भविष्य के लिए मैं इस बात का ध्यान रखूँगा अथवा राजा से आज्ञा ले लूँगा ।

माली—(कुछ दूटे पौधे दिखलाकर) भविष्य की बात भविष्य जाने, पहले भूत की तो बताइए । ये पौधे कैसे दूटे ? किसने तोड़े ?

कच—ईश्वर तुम्हारा भला करे । इतना अनर्गल असत्य ! मैंने पौधे नहीं तोड़े । पुष्प भी जो तोड़े वे पूजार्थ ही ।

माली—(चिन्ताकर) उल्टा चोर कोतवाल को डाँटता है । अब तुम मुझे ही डाँटते हो—आखि' दिखाते हो । तुम मुझे अकेला जानते हो ? अच्छा, अपनी धृष्टता का फल लेकर जाओ ।

[माली चिन्ताता है । शब्द सुनकर कुछ राक्षस दौड़ते हुए आते हैं ।]

राक्षस—(चिन्ताकर) क्यों क्या हुआ ? किस देवोपासक आर्य' ने आकर हमारी वाटिका को अपवित्र कर दिया ?

माली—इस ब्राह्मण-पुत्र ने बिना आज्ञा के वाटिका में प्रवेश किया, पौधों को तोड़ डाला और मना करने पर गुरुजी की धमकी देता है ।

राक्षस—अच्छी बात है । इसे गुरुजी के पास ही पकड़ ले चलो और मार्ग में ऐसा पाठ पढ़ा दो जिसको यह आजन्म न भूले ।

कच—मैं तुम लोगों से कोई पाठ पढ़ने नहीं आया हूँ । रही गुरुजी के पास चलने की बात सो मैं तो स्वयं ही जा रहा हूँ । चलिए, आप भी चलिए ।

१ राक्षस—मैं तुम्हारे साथ नहीं जाऊँगा, तुम्हें अपने साथ ले चलूँगा ।

२ राक्षस—कहिए तो इन पुष्पों से आप ही की पूजा हो । अच्छा तो यह हो कि इसे गुरुजी के पास न ले चलकर, राजा के पास ले चलें ।

कच—वृथा आलाप से कुछ प्रयोजन नहीं । जहाँ चलना हो चलो । मैं चलता हूँ ।

राक्षस—छोकरा बड़ा निडर है । इसे यहाँ से ले ही चले' ।

[सब लोग जङ्गल की ओर चलते हैं और कुछ दूर चलकर कच को एक गर्त' में डाल देते हैं ।]

१ राक्षस—इस कार्य' से भी छुट्टी मिली । अब यहाँ से शीघ्र भाग चलना चाहिए । यदि कहीं गुरुजी को इस काण्ड का शान हो

गया तो समझ लीजिए कि राजस-जाति का सर्वनाश हो गया । इस कार्य को अत्यन्त गोप्य रखना चाहिए ।

१ राजस—हाँ, यहाँ से सब लोग पृथक्-पृथक् होकर अपने-अपने स्थानों पर चले जायँ । मैं जाकर महाराज को गुप्त सूचना दे दूँगा जिससे वे अवसर पड़ने पर इसके लिए कोई उपाय सोच रखें ।

[सब अलग-अलग अपने-अपने घरों को जाते हैं ।

मार्ग में १ राजस से गुप्तचर का मिलना]

चर—क्यों, तुम इस समय यहाँ कैसे ! तुम्हारे लिए मुझे बड़ा कष्ट सहना पड़ा । मैं तुम्हारी खोज में कई दिनों से था । कहो, उसके लिए क्या किया ?

राजस—हम लोगों के लिए यह कार्य करना चुटकी बजाने के समान था । सङ्केत हुआ नहीं कि कार्य पूर्ण । प्रधान गुप्तचरजी की आज्ञा से मैंने उसे कई बार ज्ञात और अज्ञात रूप से कष्ट पहुँचाया परन्तु धन्य है उसकी सहनशीलता और साहस को, वह अपने निर्दिष्ट मार्ग से विचलित नहीं हुआ । एक बार हम लोगों ने उसे ले जाकर गहन वन में छोड़ दिया परन्तु सन्ध्या-समय वह फिर अपने स्थान पर पहुँच गया । एक बार गर्त में गिरवा दिया गया था परन्तु वहाँ से भी वह गुरु-पुत्री देवयानी की सहायता से बच गया । कहाँ तक कहें, सब प्रकार के सम्भव-असम्भव कष्ट पहुँचाये गये परन्तु वह अपने पथ से विचलित न हुआ—गुरु-आश्रम छोड़कर न भागा । अन्त में हमें वही करना पड़ा जिसे हम लोग नहीं करना चाहते थे । कृपया आप ही जाकर महाराज वृषपर्वा को इस शुभ समाचार की सूचना दे दीजिए । मैं उन्हीं के पास जा रहा था । अब मेरे जाने की कोई आवश्यकता नहीं ।

गुप्तचर—तुम जाओ, इस समाचार के प्रकट हो जाने पर बहुत बड़े अनर्थ की आशङ्का है, अतः इसे किसी पर प्रकट न होने दिया

जाय । मैं अभी महाराज के पास जाकर यह सब समाचार उन्हें सुना दूँगा ।

दोनों का अपने-अपने मार्ग से प्रस्थान
पट-परिवर्तन

दृश्य २

शुक्राचार्य का निवास-स्थान

(शुक्राचार्य कुछ विचारमग्न बैठे हैं, अचानक देवयानी का प्रवेश)

देवयानी—पिताजी, कच प्रातःकाल से गये हैं परन्तु अभी तक नहीं लौटे । मैंने उनके लिए भरसक प्रयत्न कर लिया है । अब मेरा कुछ भी वश नहीं चलता । आप उठिए और अभी चलकर उनकी खोज कीजिए । राज्ञों ने कच के प्रति कोई अनर्थ अवश्य किया है । वे कच को कई बार कष्ट पहुँचा चुके हैं । मैं उन सब बातों की सूचना आपके भी बराबर देती रही हूँ । परन्तु आपने कभी कोई समुचित प्रबन्ध नहीं किया । अब बतलाइए, मैं क्या करूँ । यहाँ अनार्यों में रहते हुए कच के अतिरिक्त मेरा कोई साथी भी नहीं था । मैं उसके बिना सुखी नहीं रह सकती । आप उसकी खोज कराइए और चलिए, मैं भी आपके साथ चलती हूँ ।

शुक्राचार्य—पुत्री, सावधान, यह सत्य है कि मैंने स्थिति-गाम्भीर्य की ओर कभी ध्यान नहीं दिया । यदि राज्ञों ने कच को कुछ भी हानि पहुँचाई तो मेरे लिए बड़ी ही लज्जा की बात होगी । वह मेरा शिष्य था । मेरे मित्र बृहस्पति ने मुझ पर पूर्ण विश्वास करके अपने इकलौते पुत्र को मेरे पास भेजा था । उसका यहाँ कष्ट से रहना बृहस्पति के प्रति विश्वासघात होगा ।

देवयानी—पिताजी, उठिए, हम लोग ऐसा कार्य करें जिससे हम पर विश्वासघात का दोष न लगाया जा सके। मैं तो प्रयत्न करके हार चुकी हूँ। (व्यग्रता से) पिताजी, अब विलम्ब न कीजिए।

शुक्राचार्य—देवयानी, घबराओ नहीं। मेरे जीवित रहते कच का कुछ भी अनर्थ नहीं हो सकता। यदि कच की खोज न लगी तो मैं आज ही प्रलय उपस्थित कर दूँगा।

देवयानी—प्रलय उपस्थित करने के पूर्व खोज तो कर लीजिए।

शुक्राचार्य—अच्छी बात है। शान्त होकर बैठो। मैं कच को अभी ढूँढ़ निकालता हूँ। (आचार्य शुक्र का कुछ क्षण ध्यानावस्था में बैठने के उपरान्त) देवयानी ! उठो, जल्दी चलो। अनर्थ हो गया। कच को दुष्टों ने मार डाला और वह एक गर्त में पड़ा हुआ है।

देवयानी—(घबराकर) चलिए।

[शुक्राचार्य और देवयानी का सवेग प्रस्थान। दोनों निर्जन वन में विह्वल घूमते हैं और अभीष्ट गर्त की खोज न पाकर एक स्थान पर बैठ जाते हैं।]

शुक्राचार्य—देवयानी, सचेत होकर बैठो। मैं सञ्जीविनी विद्या का प्रयोग कर रहा हूँ।

देवयानी—पिताजी, आप सञ्जीविनी विद्या का प्रयोग अविलम्ब करें।

[आचार्य शुक्र का सञ्जीविनी विद्या का प्रयोग करना और तत्काल कच का सम्मुख उपस्थित होना।]

कच—गुरुदेव शिष्य कच आपको प्रणाम करता है।

शुक्राचार्य—वत्स, चिरञ्जीव हो। तुम्हें बहुत कष्ट मिला। तुम कहाँ थे ?

देवयानी—(प्रसन्नतापूर्वक) कच ! तुम आ गये । तुम्हारे लिए पिताजी बहुत व्यग्र थे । (शुक्राचार्य से) पिताजी, यह हम लोगों का भाग्य था कि कच के इस जन्म में ही दर्शन हो गये ।

कच—गुरुजी की कृपा तथा आशीर्वाद से मैं सकुशल आ गया । मुझे गुरुजी के दर्शन अभीष्ट थे अतः हुए भी ।

देवयानी—यह तो बतलाओ, तुम यहाँ कैसे ?

शुक्राचार्य—यहाँ विलम्ब करने की आवश्यकता नहीं । चलो घर चलें । वहीं इस विषय में वार्तालाप होगा । देर बहुत हो गई है । कच को भी स्वस्थ होने के लिए विश्राम की आवश्यकता है । तुम भी तमाम दिन घूमते-घूमते थक गई होगी । मुझे भी कल राक्षसों की ओर से युद्धस्थल में उपस्थित होना है ।

देवयानी—कल युद्ध में उपस्थित होना है और राक्षसों की ओर से ! यह आप क्या कह रहे हैं । राक्षसों पर अब तक आपकी ममता है । आप इतनी ठोकरें लगने पर भी उस मार्ग को नहीं छोड़ते । मैं आपकी पुत्री हूँ । आपसे इस सम्बन्ध में कह ही क्या सकती हूँ परन्तु आप धर्म और नीति दोनों के प्रति अनीति कर रहे हैं । थोड़ा ही समय हुआ जब आप राक्षसों से इतने अप्रसन्न थे कि प्रलय तक उपस्थित करने को उद्यत थे परन्तु अब फिर उन नीचों पर आपकी पूर्व जैसी ममता जाग्रत हो गई है । आप मुझसे कहा करते थे कि प्राणी पर जब कोई सङ्कट पड़ता है तभी उसको कुछ ज्ञान भी प्राप्त होता है—कुछ शिक्षाये भी मिलती हैं । मान लीजिए कि कच का पता न लगा होता तो आपको संसार क्या कहता ! देवगुरु बृहस्पति जब आपको मिलते तो आप उन्हें क्या मुँह दिखाते ! आप सब देखते हैं, जानते हैं और अनुभव करते हैं, परन्तु फिर भी उन राक्षसों का साथ नहीं छोड़ देते । पिताजी ! मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ कि आप अपने निश्चय पर पुनः विचार करें ।

शुक्राचार्य—पुत्री, देवयानी, तेरी बातें धर्म और नीति दोनों के उपयुक्त हैं। तुम्हारी स्थिति में जो कोई होगा वह ऐसा ही कहेगा परन्तु मेरी स्थिति में जो होगा वह वही करेगा जो मैं कर रहा हूँ। तुम्हीं बतलाओ, क्या इस समय मेरे लिए धर्म-सङ्कट नहीं उपस्थित है। मैंने राज्ञों को सहायता देने का वचन दिया था और स्पष्ट आश्वासन दिलाया था कि इस देवासुर संग्राम में उनका ही पक्ष लूँगा। यही प्रश्न है। यदि राज्ञस मेरा अपकार और अनादर भी करें तो भी मैं अपनी प्रतिज्ञा को कैसे तोड़ सकता हूँ? राज्ञस भी इस बात को भली भाँति जानते हैं। अतः वे भी अपने स्वभावानुकूल अवसर पड़ने पर मुझे सुखी और दुखी किया करते हैं। मैं तो प्रतिज्ञा-बद्ध हूँ और अपनी प्रतिज्ञा का निर्वाह करने के लिए कटिबद्ध भी। वे मेरी इसी निर्बलता का लाभ उठा रहे हैं।

देवयानी—पिताजी, आप राज्ञों के गुरु हैं। आप इनकी मृत सेना को जीवित करेंगे और अन्त में इन्हें विजयी देखकर प्रसन्न भी होंगे। परन्तु आप यह भी स्मरण रखें कि आप ब्राह्मण हैं और वे आपसे कभी हार्दिक सहानुभूति नहीं रख सकते। समय निकल जाने पर वे आपको कुछ भी नहीं समझेंगे। कृतघ्नी के प्रति उपकार करना अपना ही अपकार है।

शुक्राचार्य—उनकी समझ पर मेरा अन्नजल तो चलता नहीं। मुझे इसकी चिन्ता नहीं कि वे मेरे लिए क्या सोचते हैं अथवा सोचेंगे। मुझे अपने कर्त्तव्य का विचार है और मैं अपने पथ से न्यूनातिन्यून भी किसी ओर न हटूँगा।

देवयानी—पिताजी, मैं आपको आपके कर्त्तव्य-पथ से विचलित नहीं करना चाहती। जिस प्रकार आपको एक प्रतिज्ञा का स्मरण है उसी प्रकार दूसरी भी विस्मृत नहीं हुई होगी। आप कच को विपदाओं से कब छुड़ायेंगे? यदि कच का कार्य पूर्ण हो जाता तो वह सकुशल लौटकर अपने पिता के दर्शन करता और आपका भी उत्तर-

दायित्व कम हो जाता । इस स्थिति में यही उचित है कि आप कच को मृतसञ्जीविनी विद्या सिखला दें । वह अपने घर चला जाय और आप भी स्वस्थ-चिन्त होकर राज्ञों की सहायता करें ।
 शुक्राचार्य—हाँ, मैंने भी यही सोचा है, जो तुम कह रही हो । मैं दो-चार दिन में कच को सञ्जीविनी विद्या सिखला दूँगा ।

देवयानी—जिस दिन आप सिखलायेंगे, वह बहुत ही शुभ दिवस होगा ।

शुक्राचार्य—निश्चिन्त रहो पुत्री । (कच से) दो-तीन दिन के उपरान्त मैं सब कार्य छोड़ कर तुम्हें सञ्जीविनी विद्या सिखलाना आरम्भ कर दूँगा ।

(निवासस्थान पर विश्राम के लिए प्रस्थान)

पट-परिवर्तन

दृश्य ३

गुप्तचरों की बैठक

प्रधान गुप्तचर—भाइयो, महाराज वृषपर्वा का सङ्केत पाकर प्रथम तो हम लोगों ने यह प्रयत्न किया कि वह ब्राह्मण का बालक भाग ही जाय । उसको भगाने के लिए अनेक प्रकार के भय दिखलाये गये परन्तु वह टलकर न गया । एक बार तो तुम लोगों ने उसे मारकर एक गहरे गर्त में भी डाल दिया परन्तु वहाँ से भी वह गुरुदेव की कृपा से जीवित होकर निकल आया । यद्यपि निश्चिन्त मन से ज्ञात

महाराज वृषपर्वाजी ने इसी विद्या के कारण शुक्राचार्य को अपना आचार्य बनाया है और सदैव उनको प्रसन्न करने के लिए प्रयत्नशील रहा करते हैं। अब यत्न यह करना चाहिए कि महाराज शुक्राचार्य उस बालक को विद्या सिखलाने में समर्थ ही न हो सकें। बतलाओ, तुम लोगों ने इस सम्बन्ध में क्या सोचा है।

गुप्तचर—हाँ, सोच लिया। एक बार तो मरकर जी उठा। अब ऐसा यत्न करना चाहिए जिससे वह ऐसी मौत मरे कि पुनः जीवित होने का नाम ही न ले।

गुप्तचर—भाई, बतलाओ। इस सम्बन्ध में आपने क्या सोचा है।

गुप्तचर—करनेवाली बातें कही नहीं जातीं और कहनेवाली बातें की नहीं जातीं। तुम जानकर क्या करोगे। मेरे साथ चलो और इस पवित्र कार्य में हाथ बँटाओ।

गुप्तचर—हाँ, सचमुच यह बहुत ही पुण्य कार्य होगा। इससे सहस्रों राज्ञों की प्राण-रक्षा हो जायगी। यदि एक को बलि देकर १०० की रक्षा होती हो तो कुशल नीतिकार उस एक की बलि सहर्ष कर देने की आज्ञा देते हैं।

गुप्तचर—धर्म और नीति से कुछ अभिप्राय नहीं। हमें एक कार्य करना चाहिए और वह किया जायगा। चाहे उस कार्य के पूर्ण करने से धर्म का पालन हो अथवा खण्डन।

गुप्तचर—(प्रथम चर की ओर सङ्केत करते हुए) देखो तुम लोग इन्हीं के आदेशानुसार और परामर्श से कार्य करो। तुम्हें इनके आदेशित वाक्यों का कारण पूछने का अधिकार न होगा। तुम लोग जाओ और इस कार्य को बड़ी ही सावधानी से करो।

गुप्तचर—हाँ, ऐसा ही होगा। आपके आदेश के पूर्व ही मैंने एक दूत को भेजकर उस ब्राह्मण-बालक के सम्बन्ध में आवश्यक समाचार प्राप्त कर लिया है और अब दूसरे दूत की प्रतीक्षा है जो मुझसे

आकर यह बतलायगा कि वह कहाँ है, किस समय कहाँ रहता है ! घर से बाहर निकलकर जहाँ जाता है ? कल सन्ध्या तक हम सब लोग मिलकर इस काण्ड को भी समाप्त कर देंगे ।

(एक दूत का प्रवेश)

प्र० गुप्तचर—दूत, कहे क्या समाचार लाये ।

दूत—आचार्य शुक्र की आज्ञा से वह कल स्नान करने के लिए वन को जायगा और वहीं एकान्त में बैठकर मन्त्र का जाप करेगा । यह भी ज्ञात हुआ है कि उसके तीन दिन तक एक ही मन्त्र का निर्जन स्थान में बैठकर जाप करने के पश्चात् उसे गुरुजी मृतसञ्जीविनी विद्या का ज्ञान दे देंगे ।

प्र० गुप्तचर—सुन लिया तुम लोगों ने । अब इस विषय में एक क्षण भी व्यर्थ नष्ट नहीं करना चाहिए । सब लोग अभी जाकर अपने कार्य में तत्परता से लग जाओ ।

(सब का प्रस्थान)

पट-परिवर्तन

दृश्य ४

वृषपर्वा के दरबार में विजयोत्सव

वृषपर्वा—उपस्थित बन्धुवर्ग ! आज हम लोग यहाँ विजयोत्सव मनाने के लिए एकत्र हुए हैं । देवासुर-संग्राम का आज प्रथम ही दिवस है जब हम पूर्ण रूप से विजयी हुए हैं । सर्वप्रथम हम अपने उन वीरों को बधाई देते हैं जो युद्ध में प्राण त्याग कर और आचार्य शुक्र की कृपा से हम लोगों में पुनः उपस्थित हैं । इन लोगों का साहस तो प्रशंसनीय है ही परन्तु सबसे अधिक उत्साहवर्धक बात

हम लोगों पर गुरुजी की कृपा है। यदि आचार्य की अनुकम्पा हम लोगों पर न होती तो हम लोग देवताओं के कुचक्र में फँस ही चुके थे। अब वे हमारे पाश में पड़े हैं। उन्हें अब अपनी चौकड़ी याद नहीं आती। अब दो-एक दिन में युद्ध का अन्तिम दिवस भी होगा। उस समय देवों की रही सही शक्ति भी नष्ट हो चुकेगी। देवता सदैव हमारे दास होकर रहेंगे। परन्तु वह शुभ दिन आने के पूर्व ही उसके स्वागत के लिए आज से ही साधन एकत्र किये जा रहे हैं। अभी गुरुजी के यहाँ से आकर दूत ने यह सूचना दी है कि वे भी कुछ देर में विजयोत्सव में सम्मिलित होने आयेंगे। अतः उनके आने के पूर्व ही हमें आचार्य जी के स्वागत के लिए सब आवश्यक वस्तुएँ एकत्रित कर लेनी चाहिए।

प्रधान सचिव—महाराज की जो आज्ञा। आचार्यजी के स्वागत के लिए हम सब उद्यत हैं।

(एक दूत का प्रवेश)

दूत—आचार्य शुक्रजी विजयोत्सव में सम्मिलित होने के लिए पधारें हैं।

[आचार्य शुक्र का प्रवेश, वृषपर्वा तथा अन्य राजसगण स्वागत के लिए उठकर प्रणाम करते हैं।]

वृषपर्वा—(नत होकर) गुरुजी, यह आपकी ही महती कृपा का फल है कि हम लोगों ने देवताओं को इतनी निर्दयता से पराजित किया और अब आगामी दिवसों के युद्ध से ये सदैव के लिए हम लोगों के दास बननेवाले हैं। यदि आपकी कृपा हम पर न होती तो यह विजय हम लोगों के वश की बात नहीं थी। कल के युद्ध से वे हम लोगों से इतना डरने लगे हैं—हम लोगों को देखकर ऐसा भागते हैं जैसे सवेग नदी की धार को देखकर ऊँट। आज आपके स्वागतार्थ ही ये सब उपकरण उपस्थित हैं।

शुक्राचार्य—यह सत्य है। मुझे भी यह शुभ दिन देखना था। मैंने अपनी प्रतिज्ञा की पूर्णता प्राप्त कर ली है। आज चारों ओर आनन्द

ही आनन्द मनाया जा रहा है। आज प्रातः असुरों की भेजी हुई भेंट भी अनुपम थी। आज की मदिरा में जो स्वाद था वह अन्य दिवसों की मदिरा में न था। आज विजयोत्सव के कारण प्रत्येक वस्तु आनन्दमयी दिखाई पड़ रही है। आज फलों का स्वाद विचित्र है। फूलों का सौन्दर्य भी निखरा हुआ देख पड़ता है। यौवन में मत्तता है। वृद्धता में भी यौवन है।

वृषपर्वा—महाराज, विनोद के लिए प्रधान सचिव ने कुछ नृत्य-गान का आयोजन किया है। आपकी प्रतीक्षा हो रही थी। अब यदि आपकी आज्ञा हो तो.....

शुक्राचार्य—हाँ, अवश्य, अवश्य। विनोद के लिए आज से अच्छा अवसर कब प्राप्त होगा ?

(नर्तकी का प्रवेश और गायन)

आज सब ओर विजय की धूम।

विटप-शिखा पर पवन नाचती भ्रमर रहे हैं भ्रूम।

कुसुम-कटोरे में रस पीते तितली के गण धूम॥

आशा किरण खिलाती सबको सुमन-सुमन मुख चूम।

आज सब ओर विजय की धूम॥

(नर्तकियों का गायन के उपरान्त प्रणाम करके प्रस्थान)

शुक्राचार्य—अब मेरी मनोकामना पूर्ण हुई। हम विजयी हुए। आज आनन्द के सभी साधन उपस्थित हैं परन्तु फिर भी मुझे कुछ अभाव-सा प्रतीत होता है। मैं इतनी बड़ी विजय के पश्चात् भी कुछ खोया-सा अनुभव करता हूँ। मेरे उदर में एक जलन-सी प्रतीत हो रही है परन्तु कुछ कारण नहीं जान पड़ता।

वृषपर्वा—आचार्य, आप कुछ चिन्तित दिखाई पड़ते हैं। विजयोत्सव में इस व्यग्रता का कारण ?

शुक्राचार्य—कारण ? कुछ मेरी समझ में भी नहीं आता। मुझे कुछ ध्यान आता है कि अपने स्थान पर असुरों की लाई हुई मदिरा

पीने के पश्चात् मुझे व्याकुलता प्रतीत हो रही है। मैं उन लोगों के साथ मांस-मदिरा के से वनमें ऐसा लग गया कि अपनी प्रिय पुत्री देवयानी से भी न मिल सका। युद्ध-सम्बन्धी कार्यों में व्यस्त रहने के कारण अपने प्रिय शिष्य कच का भी समाचार न ज्ञात कर सका। राज्ञस राज ! मेरा मन अब घर जाने को चाहता है। मैं अब अधिक देर यहाँ नहीं ठहर सकता।

वृषपर्वा—महाराज, आप चिन्ता न करें। मैं अभी दूत भेजकर आश्रम से कुशल-समाचार मँगवाये लेता हूँ।

शुक्राचार्य—अच्छा आप शीघ्रता करें। मैं दूत के लौटकर आने तक प्रतीक्षा करता हूँ।

[वृषपर्वा के आज्ञानुसार एक दूत शुक्राचार्य के आश्रम का समाचार लेने को जाता है और थोड़ी देर में लौट आता है।]

शुक्राचार्य—(स्वयं उठकर) कहो दूत, क्या समाचार लाये हो ? मेरी पुत्री ने मेरे लिए क्या समाचार भेजा ? वह मेरी प्रतीक्षा तो नहीं करती ?

दूत—गुरुदेव, अपराध क्षमा हो। मैं यहाँ से कुछ ही दूर गया था कि आपके निवासस्थान से आये हुए दूत ने यह बतलाया कि देवयानीजी मूर्च्छित पड़ी हैं। आपको बुलाया गया है। आप शीघ्र आश्रम पर चले।

शुक्राचार्य—यह कैसे ? क्या हुआ ? मैं अभी चलता हूँ। महाराज वृषपर्वा, मैं अब यहाँ नहीं ठहर सकता। मेरा जाना अनिवार्य है।

वृषपर्वा—आचार्य, मैं भी आपके साथ चलता हूँ।

शुक्राचार्य—नहीं, आपको रज्ज में भङ्ग करने की आवश्यकता नहीं। कल सम्भवतः युद्ध का अन्तिम दिवस होगा। तुम उसके लिए तैयारी करो। मैं भी घर का समाचार जानकर युद्ध की तैयारी में सहयोग दूँगा।

शुक्राचार्य का सवेग प्रस्थान
कुछ समय उपरान्त सभा विसर्जन।

पट-परिवर्तन

दृश्य ५

शुक्राचार्य का निवासस्थान

देवयानी मूर्च्छित पड़ी है और मैं कुछ छात्र उपचार में लगे हैं ।

(शुक्राचार्य का प्रवेश)

शुक्राचार्य—(देवयानी को मूर्च्छित देखकर) देवयानी, पुत्री देवयानी, तुझे क्या हो गया ? तेरा जैसा साहस तो बड़े-बड़े साहसी वीरों में भी दृष्टिगोचर नहीं होता था । किस असाधारण कारण से तेरी यह दयनीय दशा हुई है । कच ! पुत्र कच, देवयानी की यह दशा कब और कैसे हुई ? तुमने मुझे इसकी सूचना भी नहीं दी । इसको स्वस्थ करने का कुछ उद्योग भी नहीं किया । तुम कहाँ हो ? मेरे पास आकर सब कारणों को स्पष्ट कहो । मैं देवयानी को दुःखी नहीं देख सकता । कच, शीघ्र आओ । (आचार्य शुक्र बैठ जाते हैं ।)

एक छात्र—आचार्यजी ! आज प्रातःकाल से कच के विषय में कुछ समाचार नहीं ज्ञात है । देवी देवयानीजी के साथ हम सब लोग उनको ढूँढ़ते-ढूँढ़ते बहुत ही दुखी हुए परन्तु उनका कुछ भी पता न लगा । अन्त में दुखी होकर 'ये आपके पास दौड़ी हुई गईं' परन्तु उस समय आप बड़े ही प्रेम से राज्ञों की लाई हुई भेंट को ग्रहण कर रहे थे । बहन देवयानी को कुछ भी कहने का साहस न हुआ । भूखी, प्यासी और थकी हुई यहाँ आकर गिर पड़ीं और फिर मूर्च्छित हो गईं । आपके पास सूचना भी भेजी गई परन्तु आपने इस ओर कुछ ध्यान नहीं दिया और कुछ समय उपरान्त आप वृषपर्वा के दरबार में चले गये । वहाँ भी एक दूत को भेजा और कुछ समय उपरान्त अब आप स्वयं देवयानीजी को इस अवस्था में देख रहे हैं ।

शुक्राचार्य—हाँ, तो इसका यह अर्थ है कि कच भी गये, देवयानी की यह दशा और कल सम्भवतः देवासुर-संग्राम का अन्तिम दिवस। मेरे लिए तीनों अनिवार्य कार्यों का एक साथ आ पड़ना, मुझे धर्म-सङ्कट में डालता है। अच्छा, मुझे जल दो। सर्वप्रथम मैं देवयानी की मूर्च्छा दूर करूँ। देवयानी से कच के सम्बन्ध में ज्ञातव्य बातें प्रकट होंगी और दोनों के स्वस्थ होने पर मैं कल के युद्ध के लिए उपकरण एकत्र करूँगा।

२ छात्र—(जल देते हुए) आचार्यजी, जल उपस्थित है।

शुक्राचार्य—(जल के छींटे देवयानी की आँखों और मुख पर डालते हैं। कुछ क्षणोपरान्त वह मूर्च्छा से जाग्रत होती है।) पुत्री, किस असह्य वेदना ने तुम्हारी यह दशा कर दी? कदाचित् तुम्हें यह ज्ञात नहीं कि संसार में कोई भी वस्तु मुझे तुमसे अधिक प्रिय नहीं। तुम्हें दुःखी देखकर मेरे अङ्गों पर पक्षाघात-सा हो जाता है। देवयानी, मैं तुम्हें दुःखी नहीं देख सकता। उठो, स्वस्थ होकर कारण बताओ।

देवयानी—(उठकर) पिताजी, कारण यह है कि आपकी अनुपस्थिति में मैंने आपकी सौंपी हुई वस्तु खो दी। कच का कुछ पता नहीं। पिताजी, अब सन्देह का कुछ स्थान नहीं। राक्षसों ने पुनः उसे मार डाला है। अब उसको ढूँढ़ना व्यर्थ है। सब प्रकार से उसकी खोज कर ली गई है। अब आप कच को जीवित कीजिए अथवा कच के साथ ही एक दूसरी आत्मा की भी वही दशा होगी।

शुक्राचार्य—पुत्री, सावधान हो, मैं अभी कच की खोज करता हूँ। (ध्यान-मग्न होकर बैठ जाते हैं और कुछ क्षणोपरान्त आँखें खोलकर) देवयानी, अनर्थ हो गया। कच तो मेरे पेट में है। राक्षसों ने उसे मार कर, उसके रक्त और मांस से मदिरा खींचकर मुझे पिला दी। अब प्रश्न बहुत ही भयानक है—समस्या बड़ी ही जटिल हो गई है। अब बतलाओ तुम क्या चाहती हो। यदि

कच जीवित होता है त मेरा मरण निश्चित है और यदि मैं जीवित रहता हूँ तो कच के जीवित होने का प्रश्न ही नहीं उठता ।

देवयानी—पिताजी, मेरे तो आप पिता ही हैं । आपके जीवित रहने से मेरा सभी प्रकार का सुख है—कल्याण है और कच के जीवित रहने पर मेरा भी जीवित रहना सम्भव है । अतः मेरे सुख और कल्याण के लिए आप और कच दोनों का जीवित और स्वस्थ रहना अनिवार्य है ।

शुक्राचार्य—दोनों का जीवित रहना असम्भव है । तुम्हें दो में से एक को खोना पड़ेगा ।

देवयानी—यह नहीं हो सकता । पिताजी, मेरे जीवन से दोनों सम्बन्धित हैं । दोनों ही रहेंगे और इसके लिए आपको उपाय करना पड़ेगा ।

शुक्राचार्य—(कुछ विचार कर) अच्छा, एक उपाय है । मैं तुम्हें मृतसञ्जीविनी विद्या सिखला दूँगा । कच को जीवित करके मेरी मृत्यु हो जायगी । तुम मुझे जीवित कर लेना ।

देवयानी—पिताजी, अच्छा तो यह हो कि आप कच को ही सिखला दें । आप और कच दोनों एक दूसरे को जीवित कर लेंगे ।

शुक्राचार्य—हाँ, बहुत अच्छा सोचा । बेचारे कच को मेरी अतत्परता से बहुत कष्ट सहना पड़ा । इतने कष्ट सहकर उसने यह प्रमाणित कर दिया कि वह इस विद्या को प्राप्त करने के लिए सर्वथा योग्य बन चुका है । मैं कच पर बहुत प्रसन्न हूँ और अब अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार सञ्जीविनी सिखाने जा रहा हूँ । वह मुझे भी जीवित कर लेगा परन्तु देवयानी, एक बात का ध्यान रहे कि अब देवासुर-संग्राम समाप्त होने जा रहा है । राक्षसों को विजयी बनाने की प्रतिज्ञा मैं कर चुका हूँ । यदि मैं स्वस्थ होकर समय से अपने कार्य में न लग गया तो मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण न हो सकेगी और इसके

लिए मुझे बड़ा ही मनस्ताप होगा । पुत्री, कुछ मेरी बात समझ में आई ?

देवयानी—हाँ पिताजी, मैं आपके शब्दों को अक्षरशः समझ गई । सभी कार्य आपके आदेशानुसार होंगे ।

शुक्राचार्य—तुम यहाँ से दूर हट जाओ । मैं कच को जीवित करता हूँ ।

[देवयानी हट जाती है । शुक्राचार्य मन्त्र द्वारा कच को जीवित करके स्वयं पृथ्वी पर अचेत होकर गिर पड़ते हैं । कच अपनी सीखी हुई विद्या से आचार्य शुक्र को जीवित करते हैं ।]

पट-परिवर्तन

दृश्य ६

स्थान उद्यान—देवयानी एकाकी

देवयानी—

(गान)

आज इस सूने हृदय में उठ रही क्यों चाह-सी है !
एक काँटा खटकता है एक उर में दाह-सी है ॥
पवन-उद्वेलित उदधि-सा मन तरङ्गें ले रहा है ।
स्नेह-सागर की कहीं मिलती नहीं कुछ थाह-सी है ॥
फिर विचारों की घटा मन-व्योम में मँडरा रही है ।
चमक चञ्चल विज्जु-सी धुँधली बनाती राह-सी है ॥

—आज इस सूने हृदय में० ।

आज कितनी प्रसन्नता का दिवस है । जिस कार्य के लिए मैं आदि से प्रयत्नशील रही वह पूर्ण हो गया—कच को सञ्जीविनी विद्या प्राप्त हो गई । परन्तु आज इस प्रसन्नता में भी मेरे हृदय में एक विषाद-सा क्यों व्याप्त हो रहा है । अब कच शीघ्रातिशीघ्र अपने स्थान को चले

जायँगे और यह उनके हित के लिए अच्छा भी है। सम्भवतः इसी कारण मेरे हृदय में कुछ दुःख प्रतीत हो रहा हो। परन्तु आज बार-बार दाहिनी आँख भी फड़क कर किसी भावी अनिष्ट की सूचना दे रही है। अस्तु, जो होगा, देखा जायगा। ज्ञात नहीं इस समय कच है कहाँ।

(कच का सहसा प्रवेश)

कच—बहन, तुम यहाँ ! मैं तुम्हें ही खोज रहा था।

देवयानी—(प्रसन्नतापूर्वक) कच, आज बड़ी ही प्रसन्नता की बात है कि तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध हुआ। सबकी प्रतिज्ञायें पूर्ण हुईं। पिताजी स्वस्थ होकर अपने युद्ध-कार्य में लग गये और तुम्हें भी सखीविनी विद्या प्राप्त हो गई। अब आशा की जाती है कि तुम्हारे द्वारा देवताओं की मनोकामनायें पूर्ण होंगी। अभी तक हमारी आर्य-संस्कृति का नाश अवश्य-भावो प्रतीत होता था, अब उसकी रक्षा हो जायगी। पिताजी ने जिस दिन से असुरों का साथ देना आरम्भ किया था उसी दिन से मुझे यह भय लगा रहता था कि क्या पिताजी के द्वारा ही आर्य-संस्कृति नष्ट होगी। क्या जिस माली से वृद्ध-रक्षा की आशा की जाती है वही उन पौधों को नष्ट कर देगा ? अब पिताजी ने प्रसन्न होकर तुम्हें मृतसञ्जीविनी विद्या सिखला दी है और तुमने उसका यही प्रयोग करके अपनी सफलता भी देख ली। पिताजी बहुत चिन्तित थे कि कहीं तुम उनको जीवित करने में असावधानी न करो। वे एक ओर राज्ञसों का समर्थन कर रहे थे और दूसरी ओर तुम्हें विद्या सिखलाकर अपने विपक्ष का भी साथ दे रहे थे। सचमुच ऐसा धर्म-सङ्कट निवाहना हमारे पिताजी के ही उपयुक्त कार्य है। अन्य जन तो ऐसी स्थिति में किंकर्त्तव्य-विमूढ़ होकर विक्षिप्त हो ही जाते हैं।

कच—देवी देवयानी, यह सब तुम्हारी और गुरुजी की महती कृपा का ही फल है कि इन राज्ञसों के बीच में रहकर विद्योपार्जन करके जीवित घर जा रहा हूँ। आचार्यजी ने मूर्च्छा से जाग्रत होकर सर्वप्रथम

मुझे यही आदेश दिया था कि मैं शीघ्र राज्ञसों के बीच से निकलकर अपने स्थान को चला जाऊँ। उनकी आज्ञा पाकर मैं तुम्हारी आज्ञा लेना चाहता हूँ। मैं तुम्हारी कृपाओं के लिए आजन्म आभारी रहूँगा। यदि तुम्हारी दया और सहानुभूति मेरे प्रति न रही होती तो विद्या सीखना तो दूर, मैं मुट्ठी भर धूल का ढेर भी न रह जाता। यदि इस देवासुर-संग्राम में देवता विजयी होते हैं तो अधिक श्रेय तुम्हें ही होगा। तुम्हारे इस कार्य से आचार्यजी को भी कोई दोषी नहीं ठहरा सकता। उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा का निर्वाह किया और तुमने भी आर्य-संस्कृति के संरक्षण में सर्वथा योग दिया। मैं तुम्हें कभी भी भूल नहीं सकता। मैं भगवान् से प्रार्थना करता हूँ कि संसार के सभी सुख तुम्हारे लिए सुगम और करतलगत हों। देवयानी, मैं तुमसे याचना करता हूँ कि मेरे ज्ञात और अज्ञात अपराधों को क्षमा करना। बहन, भगवान् तुम्हारा कल्याण करे। कदाचित् युद्ध के पश्चात् फिर कभी तुम्हारे दर्शन हों।

देवयानी—कच, तुम्हें ऐसी बातें कहकर मुझे लज्जित नहीं करना चाहिए। मैंने तुम्हारे विद्या सीखने के सम्बन्ध में जो कुछ भी किया, अपना कर्त्तव्य समझकर किया। पिताजी ने कारणवश राज्ञसों को सहायता देने की प्रतिज्ञा कर ली थी। वे व्रती ब्राह्मण होने के कारण उस प्रतिज्ञा का त्याग भी नहीं कर सकते थे। मेरो सदैव से यह अभिलाषा रही है कि पिताजी राज्ञसों का साथ छोड़कर देवताओं और ब्राह्मणों का साथ देना आरम्भ कर दे। आचार्य बृहस्पति और पिताजी दोनों गुरुभाई हैं। यदि उनमें और मेरे पिताजी में कुछ और सम्बन्ध हो जाता तो बहुत सम्भव था कि पिताजी राज्ञसों का साथ छोड़कर देवताओं और ब्राह्मणों का पक्ष लेना आरम्भ कर देते।

कच—मुझे भी बहुत ही प्रसन्नता होती यदि ऐसा सम्भव होता परन्तु यह हो कैसे सकता है। इन लोगों का सम्बन्ध अब बहुत ही दृढ़ हो

गया है। हम लोग भाई-बहन के सदृश अभी तक रहते रहे। हमारे पिताओं में दृढ़तर सम्बन्ध कैसे हो—प्रश्न यह है।

देवयानी—यदि हम दोनों एक दूसरे के आजन्म साथी हो जायँ तो कदाचित् यह सम्भव हो जाय। कच, मेरे ये शब्द कामुकता के फलस्वरूप न समझो। वैवाहिक हो जाने पर यह कार्य अनुचित नहीं कहा जा सकता। धर्म और समाज के नाते इस लोगों का यह सम्बन्ध हो सकता है। हम लोग उच्च ब्राह्मण घरानों के हैं अतः इससे वर्ण अथवा धर्म के पालन में भी कोई बाधा नहीं पड़ती।

कच—देवयानी, अब मेरा विचार घर जाने का है। मैं आचार्य से आज्ञा ले आया हूँ और अब तुमसे आज्ञा चाहता हूँ। जिस प्रकार तुम अब तक मेरी सहायता करती रहीं उसी प्रकार भविष्य में भी दयालु बनी रहना। रहा हम लोगों के वैवाहिक सम्बन्ध के विषय में तो वह तो नितान्त असम्भव है। कारण कि हम लोग इस सम्बन्ध की स्वीकृति नहीं दे सकते, उसे कर भी नहीं सकते। इसके करने अथवा न करने का भार हम लोगों के पिताओं पर है। दूसरी बात यह कि मैं तुम्हें अपनी बहन मानता रहा हूँ अतः विवाह करना तो कोरी कल्पना ही है—इसका सोचना तक मानसिक पाप है। बहन, देवयानी! आर्य-गौरव के रक्षार्थ मैं अपनी प्रतिज्ञा पर अचल हूँ और तुम मेरी इस प्रतिज्ञा को निबाहने में सहायक बनो। तुम्हें यह भली भाँति ज्ञात है कि सम्भवतः कल ही युद्ध का अन्तिम दिवस होगा। आचार्यजी से यह भी ज्ञात हो ही चुका है कि इस संग्राम में देवताओं की पराजय पर पराजय हो रही है। यदि मैं शीघ्र वहाँ पहुँच कर देवताओं की सहायता नहीं कर सकता तो हमारा-तुम्हारा अब तक का किया हुआ सब परिश्रम व्यर्थ और निष्फल हो जाता है। स्थिति पर दोबारा विचार करके बतलाओ कि मेरे लिए क्या आज्ञा है।

देवयानी—कच, मुझे धर्मशास्त्र की शिक्षा न दो। हमारे-तुम्हारे दोनों के पिता धर्माचार्य हैं। हम-तुम दोनों ने धर्मशास्त्र की शिक्षा आर्य-रीति से पाई है। अतः कायिक और मानसिक पापों को जितना तुम समझते हो उतना मैं भी। क्या एक ब्राह्मण-कन्या का एक ब्राह्मण-पुत्र के साथ वैवाहिक सम्बन्ध होना कायिक अथवा मानसिक पाप है ? रह गई हम लोगों के पिताओं की स्वीकृति, तो उसके लिए मैं तुमको विश्वास दिलाती हूँ कि मेरे पिता मेरे विचार से असहमत न होंगे और आचार्य बृहस्पति भी इस सम्बन्ध को स्वीकार कर लेंगे। अतः विचार करने पर यह आपत्ति भी घटकर शून्य तक आ जाती है। आर्यवंश के स्त्री और पुरुष विवाह से पूर्व सभी से भाई-बहन का ही सम्बन्ध मानते हैं। हम लोग भी इसी प्रकार रहे। अब तुमसे इस सम्बन्ध के स्थान में दूसरा सम्बन्ध स्थापित करने की प्रार्थना की जा रही है। आ 'कन्या के लिए आर्य वर ही हो सकता है—लता के लिए वृक्ष का आश्रय अनिवार्य है। नदियों को आश्रय देने के लिए नदीश को सदैव उद्यत रहना पड़ता है। इसी प्रकार एक स्त्री को आश्रय देने के लिए एक वर की आवश्यकता पड़ती है। महाराज, कच ! बतलाओ तुम्हारा धर्मशास्त्र क्या कहता है। उचित अवस्था प्राप्त किये बिना ही तुम धर्माचार्य बन बैठे हो। मैं एक कर्मनिष्ठ, तपस्वी, त्यागी ब्राह्मण की कन्या हूँ। मैं भी अपने में स्वाभिमान और मर्यादा पाती हूँ और सदैव इसे सुरक्षित भी रखना चाहती हूँ। मैं पुनः अपनी बात दुहराती हूँ कि मैं यह सम्बन्ध केवल आर्य-संस्कृति के संरक्षणार्थ ही चाहती हूँ। मैं कामवासना से ऐसा नहीं कह रही हूँ और न किसी के रूप-रङ्ग पर आसक्त हूँ। मैंने एक उच्च आदर्श के रक्षार्थ ऐसा प्रस्ताव किया है। यद्यपि मैं जानती हूँ कि ऐसा प्रस्ताव स्त्रीजाति को करना शोभा नहीं देता और मैंने भी ऐसा करके अपने को नीचे गिराया है परन्तु ऐसा करने में मेरी एक

महत्त्वाकांक्षा है। सम्भव है यदि मैं ऐसा न कहती तो प्रस्ताव दूसरी ओर से होता परन्तु दो आर्य घरानों में मैत्री कराने के विचार से मैंने यह बात चलाई थी अतः मुझे यह अपमान सहना पड़ता है...

(चुप हो जाती है)

कच—देवी, देवयानी, सावधान। मेरे कर्त्तव्य की ओर भी ध्यान दो।

देवयानी—मुझे कर्त्तव्य का ध्यान तुमसे अधिक है और उसी को मैं सर्वश्रेष्ठ भी समझती हूँ। दूसरे को कर्त्तव्याकर्त्तव्य की शिक्षा देना मेरा कार्य नहीं। इस सम्बन्ध में जो तुम्हारी आत्मा आशा दे वही करो। मैं अब अधिक न सुनकर स्पष्ट शब्दों में 'हाँ' या 'न' सुनना चाहती हूँ।

कच—इस अवसर पर मैं 'हाँ' तो नहीं कर सकता।

देवयानी—कच, विचार करो तुम आर्य-संस्कृति के साथ धर्म के नाते अत्याचार कर रहे हो।

कच—मैं इस सम्बन्ध में दूसरा विचार रख सकता हूँ।

देवयानी—तो इसका स्पष्ट अर्थ यह हुआ कि तुम स्थिति-गाम्भीर्य की ओर से उदासीन हो।

कच—मैं इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं कह सकता।

देवयानी—कच, यदि तुम कुछ नहीं कह सकते तो एक बार फिर विचार कर लो। मैं अब राज्ञों में नहीं रहना चाहती। मैं इनसे घृणा करती हूँ परन्तु पिताजी इनका साथ नहीं छोड़ सकते। इस सम्बन्ध के हो जाने पर मैं इन अनाथों के बीच में न रहकर अपने आर्य-संस्कृत-घरानों में समय व्यतीत कर सकूँगी। पिताजी भी उस दशा में देवताओं की ओर ही आकर्षित होंगे।

कच—मेरी प्रतिज्ञा तुम्हारे तर्कों से स्थानान्तरित नहीं होती। तुम काम-वश किसी की बात पर विचार नहीं करना चाहती और अपनी एक ही बात का पिष्टपेषण करती चली जा रही हो। क्या इससे

आधिक कुछ सुनना चाहती हो ! परन्तु स्त्रियाँ तो ऐसी अवस्था में किसी दूसरे की बात सुनना ही नहीं चाहतीं ।

देवयानी—नहीं, न मैं अधिक सुनना चाहती हूँ और न कहना । कच, तुमने रस्सी का साँप बना दिया और फिर उसी से स्वयं भयभीत होने लगे । तुमने ऐसे शब्द कहकर केवल मुझे ही नहीं समस्त स्त्री जाति को अपमानित किया है । तुम एक स्त्री का आश्रय पाकर सफल-मनोरथ हुए और कार्य निकल जाने पर उसी का तिरस्कार करते हो । अतः मैं तुम्हें समस्त स्त्री जाति के सम्मान की रक्षा के लिए यह शाप देती हूँ कि तुम मृतसञ्जीविनी विद्या के प्रयोग में सफल न हो सकेगो ।

कच—मैं अभी तक गुरुकन्या को बहन के सदृश मानता रहा, इसी कारण मैंने विवाह प्रस्ताव की अस्वीकृति दे दी । दूसरे आचार्य जी ने भी इस सम्बन्ध में अपनी स्वीकृति नहीं दी थी और तीसरे क्षत्रिय-कन्याओं की भाँति ब्राह्मण-कन्याओं को स्वयंवर का अधिकार भी नहीं । मैंने इन सब बातों को विचार कर ये शब्द कहे थे । परन्तु तुमने स्थिति की महत्ता पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया और शाप देकर देवताओं, ब्राह्मणों और विशेष कर आर्य-संस्कृति के साथ विश्वासघात किया । एक ब्राह्मण-कन्या का इस प्रकार का अपराध नितान्त अक्षम्य है अतः मैं भी तुम्हें यह शाप देता हूँ कि तुम्हें कोई ब्राह्मण पति न मिलेगा ।

(कच का प्रस्थान)

[देवयानी दुःखित होकर बैठ जाती है]

(शुकाचार्य का प्रवेश)

शुकाचार्य—देवयानी, पुत्री, तुम आज इतनी दुःखी क्यों हो ! मुझे तुम्हारे और कच के सम्बन्ध में सभी बातों का ज्ञान हो चुका है । मैं स्वयं जानता था कि कच कभी इस प्रस्ताव को स्वीकार न करेगा

अतः मैंने कभी यह बात उससे नहीं कही। कोई दुखी होने का कारण नहीं। भाग्य के सम्मुख प्रत्येक को मत्था टेकना पड़ता है। तुम्हारे जन्म होने पर जन्माङ्कों से ही यह स्पष्ट हो चुका था। कच का शाप तो केवल कारणमात्र है। तुम इस बात के लिए भी दुःख न करो कि तुमने क्रोध में आकर कच को शाप दे दिया। कच मृतसञ्जीविनी विद्या किसी अन्य जन को सिखला देगा और वह व्यक्ति अपने उद्देश्य में सफल होगा। कच का शाप कि तुम्हें ब्राह्मण वर न मिलेगा, मेरे लिए कोई महत्त्व की बात नहीं। आर्य-संस्कृति के अनुकूल कन्या का विवाह समवर्ण अथवा उच्च वर्ण में होना चाहिए। ब्राह्मण-कन्या के लिए आर्यों में ब्राह्मण वर ही होना अनिवार्य है। मैंने आर्य-संस्कृति का परित्याग कर दिया है और अनार्यों का आचार्य बन चुका हूँ। अब मैं प्रत्यक्ष रूप से देव-ब्राह्मणों का विरोध करूँगा। तुम्हारी प्रार्थना और आग्रह के कारण मैंने कच को मृतसञ्जीविनी विद्या सिखला दी थी। अब युद्ध की भयङ्करता भी अधिक बढ़ जायगी। मुझे भी अब राज्ञों की ओर से अधिक प्रयत्न करना पड़ेगा। कार्यों का फल भविष्य के गर्भ में है।

देवयानी—परन्तु पिताजी, मुझे अब भी ब्राह्मणों और आर्य जाति के प्रति पूर्ण सहानुभूति है।

शुक्राचार्य—पुत्री, सावधान हो। आओ, घर चलो।

दोनों का प्रस्थान

पट-पग्वर्तन

दृश्य ७

देवराज इन्द्र की सभा

(बृहस्पति, कच तथा अन्य देवता यथास्थान बैठे हैं)

इन्द्र—आज का दिवस हम लोगों के लिए बड़ी प्रसन्नता का है। कारण, इतने समय तक राक्षसों के बीच रहकर और सफल-मनोरथ होकर कच आज सकुशल लौट आये हैं। (हर्षध्वनि) (कच से) गुरुपुत्र कच, मैं तुम्हारा किस प्रकार स्वागत करूँ और धन्यवाद दूँ। परन्तु मैं देवराज इन्द्र यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि आज से यज्ञादि शुभ कार्यों में अन्य देवताओं के साथ तुम्हारा भी भाग अनिवार्य होगा।

कच—देवराज, धन्यवाद ! यह आपका अनुग्रह तथा पूज्य पिताजी के आशीर्वाद का फल है कि मैं अपने कार्य में सफल हो सका।

इन्द्र—कच, मैं देख रहा हूँ कि देववर्ग यह जानने के लिए उत्सुक हो रहा है कि तुम इतने समय तक वहाँ कैसे रहे और विद्योपार्जन कर सके।

देववर्ग—अवश्य, अवश्य, हम लोग यह सुनना चाहते हैं।

कच—मैं आपसे सब वृत्तान्त निवेदन करूँगा परन्तु आप यह बतलाइए कि सर्वप्रथम आप लोग क्या सुनना चाहते हैं।

विष्णु—यही कि आप कहाँ रहते थे और शुक्राचार्य, उनकी पुत्री तथा अन्य राक्षसों का आपके प्रति कैसा व्यवहार रहता था।

कच—आचार्य शुक्र ने जब से मुझे अपना शिष्य बनाना स्वीकार किया तभी से मैं बराबर उन्हीं के साथ रहता था और सर्वदा उन्हें तथा गुरु-पुत्री देवयानी को प्रसन्न रखने की चेष्टा किया करता था। आचार्य मुझे अपने ही पुत्र की भाँति मानते थे—स्नेह करते थे और यदि कभी मुझे नदी के तट से स्नान और पूजनादि के उपरान्त घर लौटने

में तनिक भी विलम्ब हो जाता तो देवी देवयानी व्याकुल हो जाती थी। रही राक्षसों के व्यवहार की बात से वे तो मुझे जला करते थे—ईर्ष्या मानते थे। मैं तो उनकी आँखों का काँटा था—वे मुझे फूटी आँखों भी नहीं देखना चाहते थे। वे आचार्य अथवा आचार्य-कन्या से तो कुछ कह नहीं सकते थे परन्तु मुझसे बहुधा झगड़ा किया करते थे। कलह तो उनका नित्य का विषय सा हो गया था। दो-तीन बार तो उन्होंने मुझे मार भी डाला। मुझे जीवित कराने एवं सखीविनी विद्या लाभ कराने का श्रेय देवयानी को ही है।

इन्द्र—कच ! यह कैसे ? मैं इस प्रसङ्ग को विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूँ।

कच—देवराज, मैं स्वयं कह रहा हूँ। दो बार जब राक्षस मुझे मार कर इधर-उधर डाल आये तब देवयानी ने आग्रह करके मुझे जीवित करवाया और तीसरी बार राक्षसों ने यह विचार कर कि मैं जीवित ही न हो सकूँ, मुझे मारकर तथा रक्त एवं मांस से मदिरा खींचकर आचार्यजी को ही पिना दी।

शङ्कर—अच्छा, तब उनके पेट से बाहर कैसे निकले ? क्या पेट फाड़कर ?

कच—नहीं, ऐसा करने पर आचार्यजी को जीवित करने का कोई उपाय ही नहीं था क्योंकि उनके अतिरिक्त अन्य कोई सखीविनी विद्या को जानता ही नहीं था जो उनको जीवित कर सकता। वहन देवयानी मेरी खोज करती रही और मैं आचार्यजी के उदर में विषम ज्वाला और यातना को भोगता रहा। कुछ समय तक खोज करने के उपरान्त आचार्यजी ने तपोबल से मुझे अपने पेट में समझ कर बहुत स्पष्ट शब्दों में देवयानी से कह दिया कि मेरा तथा उनका—दोनों का—जीवित रहना कठिन ही नहीं, असम्भव है। यह सुनकर देवयानी बहुत दुखी हुई और बोली—“मेरे जीवन के साथ-साथ आप तथा कच दोनों का जीवित रहना आवश्यक है।”

अन्त में बहुत वादविवाद के पश्चात् आचार्यजी ने योगबल से मुझे सञ्जीविनी विद्या सिखला कर पेट फाड़कर बाहर निकल आने का आदेश दिया । बाहर निकल कर सर्वप्रथम मैंने आचार्यजी को ही जीवित किया ।

इन्द्र—कच, यह अत्यधिक प्रसन्नता की बात है कि तुम सञ्जीविनी विद्या सीखकर उसका प्रयोग भी कर चुके । अब आगामी युद्ध में राक्षसों की भाँति हम लोगों की भी जनहानि न होगी ।

कच—परन्तु अभी आपको कुछ समय और रुकना पड़ेगा जब तक मैं यह विद्या किसी अन्य जन को न सिखला सकूँ ।

विष्णु—क्यों ? अब किसी अन्य व्यक्ति को सिखला कर क्या होगा ? तुम्हीं मृत-सैनिकों को जीवित कर दिया करना ।

कच—मैं सञ्जीविनी विद्या जानने पर भी बहन देवयानी के शापवश किसी को जीवित नहीं कर सकता ।

वृहस्पति—(आश्चर्य से) पुत्र, यह तुम क्या कह रहे हो ! देवयानी जिसकी तुम अभी इतनी प्रशंसा कर रहे थे, जो तुमसे इतना स्नेह करती थी कि तनिक भी विलम्ब हो जाने पर व्याकुल हो जाया करती थी, जिसने दो बार तुम्हें जीवित करवाया और तीसरी बार तुम शुक्राचार्य के पेट में पहुँचकर भी जिसके कारण जीवित निकल आये तथा सञ्जीविनी विद्या प्राप्त की, जिसके कारण तुम इतने दिनों तक राक्षसों के बीच में रहकर सकुशल घर लौट आये, क्या वही तुम्हें शाप भी दे सकती थी ?

कच—हाँ पिताजी, देवयानी जो मुझसे इतना स्नेह करती थी उसे न जाने क्या हो गया कि अन्त समय जब मैं महर्षि शुक्राचार्य से लौटने की आज्ञा माँगकर उससे विदा लेने के लिए गया, तो उसने विवाह का प्रस्ताव किया । पिताजी, यह कार्य सर्वथा अनुचित था । अतः मेरे अस्वीकार करने पर उसने क्रोधित होकर शाप दिया कि इस प्रकार तुम केवल मेरा ही नहीं वरन् समस्त स्त्री जाति का अपमान

कर रहे हो अतः तुम सञ्जीविनी विद्या में सफलता न प्राप्त कर सकोगे ।

इन्द्र—यह तो बड़ा अनुचित हुआ । अच्छा, फिर तुमने क्या कहा !

कच—मैं उसके प्रस्ताव से सहमत नहीं था । अतः मैंने भी कहा कि तुम प्रेम में अन्धी होकर बिना किसी प्रकार का विचार किये इस प्रकार वार्तालाप कर रही हो । मुझे शाप देकर तुम्हें कुछ लाभ नहीं हुआ । फिर मैंने भी क्रुद्ध होकर शाप दिया—“जाओ, तुम्हें कोई ब्राह्मण वर नहीं मिलेगा ।”

बृहस्पति—अनर्थ ! महान् अनर्थ ! कच, तुम्हें यह शाप देते तनिक भी सङ्कोच न हुआ । जिसने तुम्हारे साथ इतने उपकार किये—जो सर्वदा तुम्हें सुख ही पहुँचाने का प्रयत्न करती रही, उसे तुमने इस प्रकार शाप दिया ! यदि उसने तुम्हें शाप दे दिया था, तो भी तुम्हें शाप देना उचित नहीं था । वह कन्या है, विवाह तो उसका होगा ही । यदि ब्राह्मण वर न मिलेगा तो किसी अन्य जाति में होगा । तब, तनिक विचार करो यह बात सर्वदा के लिए कहने को हो जायगी कि एक ब्राह्मणकुमारी का विवाह अन्य वर्ण में हो गया । यह कलङ्क जब तक सृष्टि रहेगा, बना रहेगा । कच, यदि वह आग्रह करती थी तो तुम्हें उसका प्रस्ताव स्वीकार कर लेना चाहिए था ।

कच—पिताजी, क्षमा कीजिए, मैं बिना आपकी अनुमति के विवाह-प्रस्ताव कैसे स्वीकार कर लेता ।

बृहस्पति—कच, तुम बे-समझ बच्चे नहीं हो । तुम्हें स्वयं अपने हिता-हित का ज्ञान होना चाहिए । जो हमारे साथ इतने उपकार करे क्या हम उसकी तनिक भी बात न मानें ! कच, तुमने बहुत बड़ी भूल की । यदि तुम उसका प्रस्ताव स्वीकार कर लेते तो महर्षि शुक्राचार्य अपनी पुत्री पर अत्यधिक स्नेह रखने के कारण बहुत अंशों तक देवताओं के शुभचिन्तक बन जाते । इससे देवयानी

की बात पूर्ण हो जाती, देवताओं का लाभ होता और आर्य संस्कृति की, जिसका राक्षस लोग शुक्राचार्य का आश्रय पाकर नाश कर रहे हैं, रक्षा हो जाती। रही मेरी अनुमति की बात, सो मैं कभी इस प्रस्ताव को अस्वीकार न करता।

इन्द्र—आचार्यजी, मुझे भी गुप्तचरों द्वारा यदा-कदा वहाँ का जो समचार मिला करता था उससे मुझे भी यही आशा हो रही थी कि देवयानी कच को ही वरण करेगी।

कच—देवराज, यह आप क्या कह रहे हैं। जिसके साथ इतने दिनों तक बहन की भाँति व्यवहार करता रहा, उसी के साथ विवाह कर लेता ! संसार मुझे क्या कहता !

शङ्कर—यह कोई बात नहीं। सभी आर्य विवाह से पूर्व परस्त्री के साथ माता अथवा बहन की भाँति व्यवहार करते हैं। रही संसार के कहने की बात, सो संसार में कोई मनुष्य सभी को प्रसन्न नहीं रख सकता। यदि कोई प्रसन्न होगा तो कोई अप्रसन्न भी। अपने-अपने दृष्टिकोण से प्राणिमात्र प्रत्येक कार्य और वस्तु का परीक्षण करता है और उसे उचित अथवा अनुचित बतलाता है। कहनेवाले के मुँह में कोई हाँथ नहीं दे सकता परन्तु बुद्धिमान् व्यक्ति असत्य आक्षेपों की ओर ध्यान न देकर अपने मार्ग से विचलित हुए बिना वही करते हैं जिसे वे उचित समझते हैं।

बृहस्पति—अच्छा, कच, क्या कभी आचार्य शुक्र ने तुमसे इस सम्बन्ध में कुछ कहा था ?

कच—नहीं, पिताजी, परन्तु यह मैं निश्चित रूप से जानता हूँ कि यदि मैं अपनी स्वीकृति दे देता तो वे इस सम्बन्ध को सहर्ष मान लेते। उन्होंने स्पष्ट रूप से कभी कुछ नहीं कहा परन्तु जहाँ तक मैं सोचता हूँ, चाहते वे भी यही थे और स्वयं देवयानी भी कहती थी कि यदि आप इस सम्बन्ध को स्वीकार कर लें तो यह पिताजी को भी अमान्य न होगा।

इन्द्र—आचार्य, क्षमा कीजिए। कच इतने समय तक देवयानी के साथ रहकर भी उसे भली भाँति समझ न सके। इन्होंने यही समझा जैसा कि ये अब भी कह रहे हैं कि वह प्रेम में अन्धी होकर अथवा कामवश होकर विवाह-सम्बन्ध चाहती थी, परन्तु जहाँ तक गुप्तचरों से अथवा कच से उसके सम्बन्ध में सुना है, मैं यही सोचता हूँ कि वह हम लोगों की शुभचिन्तिका है और वह इस सम्बन्ध को केवल हम लोगों की भलाई, आर्य-संस्कृति की रक्षा तथा महर्षि शुक्राचार्यजी से राज्ञसों का साथ छुड़ा देने के लिए ही चाहती थी।

विष्णु—कच, तुम स्वयं एक बार ठण्डे हृदय से अपने शाप पर तथा अपने व्यवहार पर, जैसा तुमने उसके साथ किया है, विचार करो और सोचो कि ऐसी परिस्थिति में जब वह सच्चे हृदय से तुमसे प्रेम करती थी—उसे कितना दुःख हुआ होगा—उस पर क्या बीतती होगी।

शंकर—कच, तुम सञ्जीविनी सीखकर राज्ञसों के यहाँ से सकुशल लौट आये, इस पर हम प्रसन्न अवश्य हैं परन्तु उतना ही इस वृत्तान्त को सुनकर दुखी भी। तुमने एक नवयुवती की आशा-बैलि को पक्षवित एवं पुष्पित होने के पूर्व ही अपने तीक्ष्ण वाक्प्रहार से मसल दिया। विवाह प्रस्ताव अस्वीकार करके तुम्हें शान्ति न मिली, सन्तोष न हुआ, शाप भी दे दिया।

बृहस्पति—आचार्य शुक्र तो सर्वदा से ही ब्राह्मणों तथा देवताओं का पक्ष नहीं लेते थे परन्तु अभी तक देवयानी उन्हें यथाशक्ति देववर्ग के विरुद्ध कोई कार्य नहीं करने देती थी। अब कच का इस प्रकार का व्यवहार उसे भी कठोर बना देगा।

कृष्ण—पिताजी, क्षमा कीजिए। क्रोध सब अनर्थों का मूल होता है। मुझे अपने किये पर स्वयं पश्चात्ताप हो रहा है। मुझे देवयानी को शाप नहीं देना चाहिए था।

ब्रह्मा—प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार कार्य करता है। भावी प्रबल होती है। कोई भी व्यक्ति इसके प्रतिकूल कार्य नहीं कर सकता। देवयानी के भाग्य में जब ब्राह्मण वर प्राप्त करना लिखा ही नहीं था तो कच इस प्रस्ताव को स्वीकार किस प्रकार कर सकते थे। ये तो शाप देकर उस अमिट नियति के पूरा करने का साधन बन गये।

इन्द्र—अस्तु, जो कुछ होना था, वह हो चुका। अब हम लोगों को कच के सकुशल विद्या-लाभ कर लौट आने के उपलक्ष्य में कुछ उत्सव करना चाहिए।

देवगण—अवश्य, अवश्य, शीघ्र ही इसका प्रबन्ध हो।

राजा इन्द्र की आज्ञा से अप्सराओं का नृत्य और गान

गान

वायु है अनुकूल सिन्धु तरङ्ग ऊँची ले रहा है।

भँवर में नैया पड़ी थी,

घोर विपदा की घड़ी थी,

किन्तु होता ज्ञात शुभ संवाद कोई दे रहा है।

मोतियों का थाल है नभ,

दीप-सा है इन्दु स-प्रभ,

आज अरुणोदय मुदा कर होड़ रोचन से रहा है।

उदित आज्ञा की उषा है,

गत निराशा की तुषा है,

सब सुरों का भाग्य नाविक बन तरी यह खे रहा है।

वायु है अनुकूल०।

पटाक्षेप

तृतीय अङ्क

दृश्य १

नदी के तट पर सखियों सहित शर्मिष्ठा और देवयानी

शर्मिष्ठा—(देवयानी के वस्त्रों को ध्यान से देखती हुई क्रोध से) क्यों, देवयानी, तुमने मेरे वस्त्र क्यों पहन लिये ?

देवयानी—(अपने तथा उसके वस्त्रों को देखकर) राजकुमारी, मैंने भूल से तुम्हारे वस्त्र पहन लिये । जल से बाहर निकलने पर शीघ्रता के कारण धोखा हो गया । अस्तु, क्रोध करने का कोई कारण नहीं । घर पहुँचकर हम लोग वस्त्र बदलकर पहन लेंगी । इस समय तुम्हारा क्रोध नितान्त अनुचित है । क्या तुमने मेरे वस्त्र नहीं पहन लिये हैं ?

शर्मिष्ठा—तुमने भूल से नहीं, जान-बूझकर ही पहने होंगे । तुम्हें मेरे वस्त्रों के समान वस्त्र मिलते ही कहाँ ! इस प्रकार, कुछ ही देर के लिए सही ।

देवयानी—सभी को अपने वर्णाश्रम के अनुसार परिधान धारण करना चाहिए । मेरा मान ब्राह्मणोचित वस्त्र धारण करने से होगा और तुम्हारा राजकन्योचित । परिवर्तित वस्त्रों का पहनना मेरे लिए अपमान हो सकता है, मान और प्रतिष्ठा नहीं ।

शर्मिष्ठा—हाँ, ठीक है । एक निर्धन ब्राह्मण की कन्या के लिए ऐसे वस्त्र लोमड़ी के खट्टे अङ्गर हैं । मेरे जैसे वस्त्रों को धारण करने से तुम्हारा अपमान होता है—अनादर होता है ! क्या जो बात तुम्हारे लिए सत्य है, मेरे लिए नहीं ! क्या मैं तुम्हारे वस्त्र पहनकर अपमानित नहीं होती ? चली हैं, वर्णाश्रम की शिक्षा देने ।

देवयानी—शर्मिष्ठा, तुम बहुत बढ़ गई हो। ऐसी बातें करके तुमने सदाचार की रक्षा नहीं की। तुम मेरे पिता के शिष्य की कन्या हो। तुम्हारे पिता मेरे पिताजी का कितना आदर-सम्मान करते हैं। परन्तु तुम मेरा कितना अपमान कर रही हो, क्या तुमने यह बात सोची है? तुम मुझे निर्धन ब्राह्मण की कन्या कहती हो। ब्राह्मण के लिए निर्धन होना कोई अपमान की बात नहीं। परन्तु तुमने ऐसे शब्दों का प्रयोग ब्राह्मणों को अपमानित करने के लिए किया है। तुम मदान्ध हो रही हो। तुम्हें अपने वैभव का अहङ्कार है।

शर्मिष्ठा—मुझे अहङ्कार है अथवा नहीं, परन्तु हाँ, हमारे पिता और तुम्हारे पिता में बहुत अन्तर है। एक सिंहासन पर बैठकर राज्य-शासन चलाते हैं और दूसरे सदैव चारणों की भाँति उनकी विरुद्ध-वली गान किया करते हैं। मैं एक बार नहीं सहस्र बार कहती हूँ, तू माँगनेवाले, दान लेनेवाले, स्तुति करनेवाले भिखारी की बेटाई है। मुझे अपने राज्य, धन तथा वैभव का अहङ्कार है परन्तु तुझे किस बात का? मेरी समानता करते तुझे लज्जा नहीं आती?

देवयानी—शर्मिष्ठा, तुमने मर्यादा भङ्ग कर दी—तुम सीमा पार कर गईं। स्मरण रहे, इसका परिणाम अच्छा न होगा। सहनशीलता की भी सीमा होती है। मैं तुम्हारे शब्दों को कदापि सहन नहीं कर सकती। अपने पिता और जाति के प्रति प्रयोग किये गये अप-शब्दों के लिए मैं प्रतिकार अवश्य करूँगी।

शर्मिष्ठा—बुप, भिखारिन, व्यर्थ की बातें लड़ाने से लाभ क्या? मेरे ही दुकड़ों से पलकर मुझी से ईर्ष्या करती है, आँखें दिखाती है! मुझसे तू क्या प्रतिकार करेगी? स्वयं को कुदायेगी। मेरा कोई क्या कर सकता है? तुम मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती, परन्तु मैं तुम्हारा क्या नहीं कर सकती!

देवयानी—यही कहलाता है छोटे मुँह बड़ी बात ।

शर्मिष्ठा—बड़ी बात क्यों, बड़े काम भी देख लो । (इतना कहते हुए शर्मिष्ठा देवयानी को एक अन्धकूप में ढकेल देती है ।)

सखियाँ—राजकुमारी, यह क्या किया ! आपको यह नहीं करना चाहिए था । क्या आपको अपने वंश की रक्षा का ध्यान नहीं ? क्या आप महर्षि शुक्राचार्य के क्रोध से परिचित नहीं हैं ? देवयानी अपने पिता का तन, मन, धन—सर्वस्व है । यदि वह कहीं मर गई तो आचार्य शुक्र की क्रोधाग्नि किसे समूल नहीं नष्ट कर देगी । क्या असुर-गुरु की सहायता के बिना तुम्हारे पिता राज्य कर सकेंगे ?

शर्मिष्ठा—चुप रहो, चलना हो तो मेरे साथ चलो, अन्यथा यहीं बैठकर उसके लिए रोओ । मुझे अनावश्यक मुखरता सह्य नहीं ।

(इतना कहकर शर्मिष्ठा चल देती है । सखियों का भी दुखी होकर उसके पीछे प्रस्थान ।)

(क्रीड़ा-कानन में राजा ययाति का प्रवेश)

ययाति—प्यास के कारण जिह्वा सूख रही है । मैं घर से कितनी दूर निकल आया । अब क्या करूँ ? कोई जलाशय भी दृष्टिगोचर नहीं होता । यहाँ बैठकर विश्राम करने से प्राण ही त्यागने होंगे । यत्नशील होने पर वर्द्धमान प्यास से जीवन-रक्षा की और भी कम सम्भावना है । फिर भी किंकर्तव्य-विमूढ़ होकर बैठ रहना का पुरुषता ही होगा । प्यासा कुएँ के पास जाता है, कुआँ प्यासे के पास नहीं । अतः अवश्य किसी जलाशय की खोज में प्रयत्नशील होना होगा ।

[राजा ययाति का जलाशय की खोज में इधर-उधर घूमना और अचानक एक कुएँ को देखकर और उसमें एक स्त्री को पड़ी देखकर आश्चर्य से—]

देवि, तुम कौन हो ! किस पापी ने इस घृणित कार्य का प्रदर्शन किया ! तुम किसी श्रेष्ठ कुल की कन्या प्रतीत होती हो ।

देवयानी—(कुएँ के भीतर से) मैं स्वनामधन्य महर्षि शुक्राचार्य की कन्या देवयानी हूँ । यहाँ मेरे गिरने का वृत्तान्त मेरे पिता को ज्ञात नहीं, अन्यथा वे अविलम्ब आकर मेरी रक्षा करते और अपराधी को उचित दण्ड देते । क्षमा कीजिए । क्या मैं भी यह जान सकती हूँ कि आप कौन हैं !

ययाति—मैं महाराज नहुष का पुत्र ययाति हूँ ।

देवयानी—राजन्, आप कृपया मेरी सहायता कीजिए ।

(ययाति का देवयानी को हाथ पकड़कर बाहर निकालना)

ययाति—देवि, स्वस्थ हो । चलो मैं तुम्हें तुम्हारे पिता के पास पहुँचा दूँ ।

देवयानी—धन्यवाद, मैं अनुगृहीत हुई । परन्तु मैं अभी जाना नहीं चाहती । मैं अपराधी को उचित दण्ड दिलाये बिना नगर में प्रवेश ही नहीं करूँगी । आपको बहुत कष्ट हुआ । अब मैं आपको और अधिक नहीं रोकना चाहती । मैं आपकी इस अनुकम्पा के लिए आजन्म आभारी रहूँगी ।

ययाति—अच्छा, फिर मैं जाता हूँ । यदि आप कहें तो मैं आचार्य जी को इसकी सूचना दे दूँ ।

देवयानी—नहीं, मैं आपको अधिक कष्ट नहीं देना चाहती ।

ययाति—तो मैं जाता हूँ ।

देवयानी—प्रणाम ।

(ययाति का प्रस्थान)

[देवयानी वहीं बैठी हुई शर्मिष्ठा से प्रतिकार का साधन सोचती है;

देवयानी की धाय का उसे ढूँढ़ते हुए आना]

धाय—देवयानी, सब लड़कियाँ जल-विहार करके अपने-अपने घर लौट गईं परन्तु तुम अभी तक यहाँ बैठी क्या कर रही हो ! तुम्हारे पिताजी तुम्हारे लिए व्याकुल हो रहे हैं । चलो घर चले ।

देवयानी—मैं वृषपर्वा के राज्य में पैर नहीं रख सकती । उसकी पुत्री शर्मिष्ठा ने मेरा और पिताजी का अपमान किया । वह लड़-भगड़कर मुझे एक कुएँ में ढकेलकर चली गई । उसने मुझे ऐसे-ऐसे कटु वाक्य कहे हैं जिन्हें स्मरण करके मेरे हृदय में अभी तक आग जल रही है । जाओ और पिताजी से सब हाल कहकर उन्हें इसी क्षण बुला लाओ, नहीं तो मैं प्राण त्याग दूँगी । इतने असह्य अपमान के बाद जीवित रहने की अपेक्षा मर जाना अच्छा है ।

धाय—अच्छा, धैर्य रखो । मैं अभी जाकर तुम्हारे पिताजी से सब वृत्तान्त निवेदन करके उन्हें बुला लाती हूँ ।

देवयानी—जो उचित समझो करो, मैं वैसे तो नहीं जाती ।

[धाय का जाकर शुक्राचार्य को साथ लेकर कुछ
 देर में वापस आना]

शुक्राचार्य—(देवयानी को गले से लगाकर) पुत्री, तुमने अवश्य कोई ऐसा कार्य किया होगा जिसका तुम्हें यह फल भोगना पड़ा । प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने कर्मानुसार सुख-दुःख प्राप्त करता है । तुम दुखी क्यों होती हो ? हम ब्राह्मण हैं । हममें धैर्य, शान्ति, सन्तोष, गाम्भीर्य और सहनशीलता होनी चाहिए । अस्तु, जो कुछ होना था हो चुका । अब घर चलो ।

देवयानी—यह सब सत्य है पिताजी, परन्तु शर्मिष्ठा ने क्रोध से लाल-लाल आँखें तरेरकर मुझसे कहा कि तू दान लेनेवाले, स्तुति करनेवाले और माँगनेवाले की कन्या है और मैं दान देनेवाले और स्तुति सुननेवाले की । उसने कहा—“भिखारिन, तू मेरे ही दुकड़ों पर पलनेवाली भिखारी की बेटाई है । तेरा बाप वन्दीजनों की भाँति मेरे पिता की स्तुति का गान किया करता है ।” पिताजी, उसके कहे हुए शब्द मेरे हृदय में शूल की भाँति चुभ रहे हैं ।

शुक्राचार्य—पुत्री, तुम बुद्धिमान् होकर क्यों ऐसी व्यर्थ की बातों पर ध्यान देकर अपने को दुखी करती हो ? तुम स्तुति करनेवाले, दान

लेनेवाले और भिक्षा माँगनेवाले किसी भिक्षुक की कन्या नहीं। तुम मेरी—महर्षि शुक्राचार्य की—कन्या हो, जिसके तपोबल एवं ब्रह्मबल से त्रैलोक्य परिचित है। इन्द्र भी इसे जानते हैं और वृषपर्वा से भी यह बात छिपी नहीं। पुत्री, मैं समस्त जगत् का स्वामी हूँ। मेरे ही आज्ञानुसार वर्षा होती है जिससे अन्न और औषधियाँ पुष्ट होती हैं। मैं पृथ्वी, और स्वर्ग के समस्त पदार्थों का अधिकारी हूँ। मैंने घोर तप करके मृतसञ्जीविनी-जैसी कठिन और अप्राप्य विद्या को प्राप्त किया, जिसको प्राप्त करने में आज तक कोई भी सफल न हो सका। यह सब जानते हुए भी तुम शर्मिष्ठा की कही हुई बातों को स्मरण करके व्यर्थ चिन्तित होती हो। साधु-जनों को दुष्टों की कही हुई बात पर ध्यान ही नहीं देना चाहिए। क्या धीर इतनी क्षुद्र-सी बात से बह जाते हैं? शर्मिष्ठा के असत्य का खण्डन संसार करेगा। मुझे इसकी आवश्यकता क्या?

देवयानी—पिताजी, ये राजस बहुत ही नीच और कृतघ्न हैं। मैं आपसे सर्वदा यह कहती रही हूँ। फिर राजसराज की कन्या से और आशा ही क्या की जा सकती है? मैं आपसे सर्वदा कहती रही हूँ और आज भी कहती हूँ कि आप अब भी इन दुष्टों का साथ छोड़ दीजिए। दुर्जनों से दूर रहने में ही कल्याण होता है।

शुक्राचार्य—देवयानी, तुम इस समय क्रोधवश ऐसा कह रही हो। जो व्यक्ति दूसरों के द्वारा की गई अपनी निन्दा को सुन लेता है—कटु वाक्यों को सहन कर लेता है—अपने अपमान को हँसकर टाल देता है, क्रोध को अपने वश में करके उस व्यक्ति को क्षमा कर देता है वही तो यथार्थ में जितेन्द्रिय होता है। भविष्य में उन्नति करनेवाले को सर्वप्रथम अपने को वश में रखना चाहिए और अपने को वश में रखने के लिए क्रोध को त्यागना पड़ता है। क्रोध की अग्नि में जलकर प्राणी अपने को दुखी करता है। वह अत्यन्त क्रोध-वश होकर प्रतिकार भी करने की चेष्टा करता है। क्रोध ही सब

अनर्थों का मूल होता है। अतः देवयानी, तुम्हें शर्मिष्ठा की कही हुई बातों पर ध्यान नहीं देना चाहिए। तुम क्षमाशील बनो और वीती हुई बातों पर ध्यान न दो।

देवयानी—पिताजी, क्षमा ! मैं लड़की होने पर भी आपकी कृपा से क्रोध, क्षमा तथा धर्म के मर्म को भली भाँति समझती हूँ परन्तु जो व्यक्ति शिष्य होकर शिष्य की भाँति व्यवहार न करे उसे कदापि क्षमा नहीं करना चाहिए। ऐसे मनुष्य को क्षमा करना उसे बढ़ावा देना है। सर्प को दूध पिलाना केवल उसके विष को बढ़ाना है। इन राक्षसों का जैसा व्यवहार आपके तथा मेरे प्रति हो रहा है वह मैं भली भाँति जानती हूँ और आप भी। परन्तु फिर भी नहीं मालूम क्यों आप यह सब कहते हैं। वे नीच हम लोगों का अपमान करते हैं—समस्त ब्राह्मण-जाति के प्रति अनादरपूर्ण कटु वाक्यों का प्रयोग करते हैं। इतना अपमान और अनादर सहने की अपेक्षा मर जाना अच्छा है। पिताजी, मैं इस प्रकार कदापि जीवित नहीं रह सकती। मैं प्राण त्याग दूँगी परन्तु वृषपर्वा के राज्य में पैर न रक्खूँगी।

शुक्राचार्य—देवयानी, यदि तुम्हारा यही हठ है तो लो, मैं अभी वृषपर्वा के पास जाकर कह देता हूँ कि अब मैं तुम्हारे साथ कदापि नहीं रह सकता। पुत्री, चाहे जो कुछ हो, परन्तु मैं तुम्हारे बिना जीवित नहीं रह सकता।

आचार्य शुक्र का प्रस्थान

देवयानी वहीं बैठी रहती है।

पट-परिवर्तन

दृश्य २

असुर-राज वृषपर्वा की सभा (क्रोधित शुक्राचार्य का प्रवेश)

[कर्मचारियों सहित राजा आचार्य शुक्र का अभिवादन करते हैं]

शुक्राचार्य—असुरराज ! बस, बहुत हो चुका । तुम लोगों ने अभी तक हमारे साथ जैसा कुछ व्यवहार किया, वह किया । परन्तु आज तो उसकी पराकाष्ठा हो गई । तुम्हारी पुत्री का इतना साहस और अहङ्कार कि मेरी पुत्री का और मेरा अपमान कर सके और उसे कुएँ में ढकेल दे ! मैं इसी क्षण तुम्हारा राज्य और तुम सब राक्षसों को छोड़कर जहाँ मेरी पुत्री सुखी रहेगी वहीं जा रहा हूँ । परन्तु स्मरण रहे कि लुद्र मूषिका के रानी बनानेवाला उसे फिर मूषिका बना सकता है । जिस प्रकार कुपथ्य भोजन नहीं पचता उसी प्रकार कुकर्म भी अपना फल अवश्य दिखलाता है और प्रायः देखा जाता है कि जन्म-जन्मान्तर में भी किये हुए पापों का फल अवश्य भोगना पड़ता है ।

वृषपर्वा—परन्तु मेरा अपराध !

शुक्राचार्य—(क्रोध से पैर पटकते हुए) इतना सब होने पर भी तुम अपना अपराध जानना चाहते हो ! अब भी अनजान बन रहे हो ! तुम्हारे अनुचरों ने मेरे प्रिय शिष्य कच को— जो सर्वगुणसम्पन्न, जितेन्द्रिय, तपस्वी तथा सदैव मेरी सेवा में रत रहकर विद्योपार्जन करता था—तीन बार मार डाला । क्या तुम्हें यह सब शात नहीं हुआ था ? कितने सरल स्वभाव से कहते हो मेरा अपराध ! ऐसा प्रतीत होता है कि तुम्हें कुछ शात ही न हो । मेरे किये हुए सद्व्यवहारों का तुम लोगों ने अच्छा फल दिया । तुम्हारी पुत्री ने तो अपनी समझ से देवयानी को मार ही डाला था ।

परन्तु अब मैं जा रहा हूँ । तुम लोगों के साथ मेरा निर्वाह कदापि नहीं हो सकता ।

वृषपर्वा—(पैरों पर गिरकर) आचार्य, क्षमा कीजिए । यदि आप हम लोगों को छोड़कर चले जायँगे तो फिर क्या होगा ? हम लोगों का सर्वनाश हो जायगा । हम लोग भी अग्नि में जलकर अथवा समुद्र में डूबकर प्राण त्याग देंगे ।

शुक्राचार्य—तुम लोग समुद्र, अग्नि, आकाश, पाताल चाहे जहाँ चले जाओ । मुझे तुमसे कुछ प्रयोजन नहीं । देवयानी मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय है । मैं उसके दुःख को नहीं सहन कर सकता । मेरा जीवन स्वयं उसी के अधीन है । मैं सब कुछ सहन कर सकता हूँ परन्तु उसका अपमान नहीं ।

वृषपर्वा—गुरुदेव, आप हम लोगों को छोड़कर कहीं भी न जायँ । प्रसुरों के पास जो कुछ है वह आपका है । मैं स्वयं आपका आज्ञाकारी दास हूँ । आचार्य, मैं बहन देवयानी का भी कितना आदर तथा सम्मान करता हूँ वह मैं ही जानता हूँ । मैं कभी भी उन्हें आपसे न्यून नहीं समझता । आज्ञा दीजिए, आप क्या करने से प्रसन्न होंगे ।

शुक्राचार्य—राजन्, मैं अभी तक तुम्हारा शुभचिन्तक हूँ परन्तु अब मैं किसी अन्य उपाय से तुम लोगो के साथ नहीं रह सकता । यदि देवयानी तुम लोगों से प्रसन्न होकर अपना हठ त्याग दे तो मुझे कुछ आपत्ति नहीं ।

वृषपर्वा—आचार्य, मुझे आशा तथा विश्वास है कि वे मुझे क्षमा कर देंगी और मैं दुष्कर होने पर भी वही करूँगा जिससे वे प्रसन्न होंगी ।

शुक्राचार्य—अच्छा, यदि ऐसा है तो हमारे साथ चलो । वह वन में बैठी हुई है ।

शुक्राचार्य का वृषपर्वा तथा कुछ अन्य राज्ञेयों
के साथ वन को प्रस्थान

पट-परिवर्तन

दृश्य ३

देवयानी वन में

(शुक्राचार्य, वृषपर्वा तथा अन्य राज्ञों का प्रवेश)

सब देवयानी को प्रणाम करते हैं ।

शुक्राचार्य—देवयानी, बेटी, शर्मिष्ठा का पिता वृषपर्वा अपने बन्धु-
बान्धवों सहित उपस्थित है । प्रसन्न हो । वह कहता है कि अपनी
समस्त सम्पत्ति सहित वह मेरा आज्ञाकारी दास है ।

वृषपर्वा—देवयानी, तुम गुरु-पुत्री होने के कारण मेरी धर्म की बहन हो ।
निष्कारण क्यों दुखी हो रही हो ! तुम्हें हम लोगों पर क्रोध नहीं
करना चाहिए । हम लोग क्षमा के योग्य हैं । देवयानी, बहन,
हम लोगों पर प्रसन्न होकर भवन में चलो, मैं दुष्कर होने पर भी
जो तुम चाहोगी वही करूँगा ।

देवयानी—राजन्, यदि यही बात है तो शर्मिष्ठा अपने कहे हुए कटु शब्दों
के लिए क्षमा-याचना करे और अपनी समस्त सखियों के साथ
मेरी दासी बनकर जब तक पिताजी के पास रहें, यहाँ रहे और
तदुपरान्त मैं जहाँ कहीं जाऊँ मेरे साथ चले ।

वृषपर्वा—देवयानी, मैं तुम्हारी प्रसन्नता के लिए ऐसा ही करूँगा । (एक
राज्ञ से) जाओ, शर्मिष्ठा से कहो कि मैं उसे अभी यहाँ बुला रहा
हूँ । वह अपनी समस्त सखियों सहित शीघ्र आवे ।

राज्ञ का प्रस्थान

(कुछ क्षणोपरान्त शर्मिष्ठा का अपनी सखियों सहित प्रवेश)

शर्मिष्ठा—पिताजी, आज्ञा ।

वृषपर्वा—शर्मिष्ठा, देवयानी को कूप में गिराकर तुमने महान् अनर्थ किया ।
महर्षि शुक्राचार्य हम लोगों को छोड़कर जा रहे हैं । उन्होंने कहा
है कि यदि देवयानी को प्रसन्न कर लो तो मैं तुम लोगों के साथ
पहले की भाँति रह सकता हूँ, अन्यथा नहीं । राजकुमारी, देवयानी

चाहती हैं कि तुम अपने कहे हुए कट्टु वाक्यों के लिए उनसे क्षमा-याचना करो और अपनी सब सखियों सहित आयुपर्यन्त उनकी दासी बन कर उनके साथ रहो। ऐसे समय में तुम अपने परिवार तथा जातिवालों की रक्षा करो अन्यथा महर्षि शुक्राचार्यजी के चले जाने पर हम लोग बिना मृत्यु के ही मर जायेंगे।

शर्मिष्ठा—(कुछ विचार कर) पिताजी, आप चिन्ता न करें। यदि मैं अपने परिवारवालों तथा जाति की रक्षा कर सकती—दुःख दूर कर सकती हूँ, तो अवश्य करूँगी। आपके आज्ञानुसार मैं अपनी सब सखियों सहित देवयानी की दासी बनकर उनकी इच्छा पूर्ण करूँगी।

(शर्मिष्ठा देवयानी के पास जाकर प्रणाम करती है)

देवयानी, मैं आपके इच्छानुसार अपनी सब सखियों सहित आज से आपकी दासी हुई। आचार्य शुक्र जहाँ आपका विवाह करेंगे वहाँ भी मैं आपके साथ चलने को प्रस्तुत हूँ। मेरे अपराधों को क्षमा कीजिए।

देवयानी—(व्यंग्य से) राजकुमारी, यह मैं क्या सुन रही हूँ ! तुम स्तुति सुननेवाले, दान देनेवाले को पुत्री हो और मैं स्तुति करनेवाले, दान लेनेवाले, एक निर्धन भिक्षुक ब्राह्मण की। भला तुम राजकुमारी होकर मेरी सेवा किस प्रकार करोगी ?

शर्मिष्ठा—स्वजनों को सुखी करने के लिए मैं सहर्ष आपकी दासी बनना स्वीकार करती हूँ।

देवयानी—(वृषपर्वा से) राजन्, अब मैं प्रसन्न हुई। पिताजी अब आप लोगों का त्याग कर कहीं न जायेंगे। (शुक्राचार्य से) पिताजी, आपका ब्रह्मबल तथा तपोबल अजेय है—धन्य है। मेरी इच्छा पूर्ण हुई। चलिए, अब घर को चलें।

सबका प्रस्थान

पट-परिवर्तन

दृश्य ४

देवयानी अपने प्रकोष्ठ में—कुछ चिन्ताग्रस्त

(शर्मिष्ठा का प्रवेश)

शर्मिष्ठा—बहन, आज यह विषाद कैसा ? आचार्य आपके सुखी रखने का इतना ध्यान रखते हैं फिर भी यह चिन्ता क्यों ? अवश्य इसका कोई विशेष कारण होगा !

देवयानी—शर्मिष्ठा, कोई विशेष बात नहीं ।

शर्मिष्ठा—देवयानी, आप मुझसे छिपा रही हैं । निःसन्देह आप किसी विशेष कारणवश ही चिन्तित हैं ।

देवयानी—शर्मिष्ठा, मैं कुछ अपने भविष्य के सम्बन्ध में विचार कर रही हूँ । जिसका मुझे पूर्ण विश्वास था उसी ने मेरे साथ विश्वासघात किया । मैं स्वयं नहीं समझ पाती कि ऐसी परिस्थिति में मेरा क्या कर्तव्य होना चाहिए ।

शर्मिष्ठा—तो क्या अब आपने कच के सम्बन्ध का विचार त्याग दिया है ?

देवयानी—हाँ, अब यदि मुझे उनसे घृणा नहीं तो विरक्ति अवश्य है । उन्होंने केवल मेरे शब्दों पर ध्यान देकर मेरी प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया परन्तु मैं किस कारण से ऐसा चाहती थी, इस पर उन्होंने ध्यान नहीं दिया । मेरे वैवाहिक प्रस्ताव को उन्होंने मेरी कामुकता का सङ्केत समझा । कच के सौन्दर्य अथवा यौवन पर मेरी आसक्ति नहीं थी । मेरी दृष्टि में मेरा आदर्श बहुत उच्च था । उसको उन्होंने न्यूनतम समझा और तिरस्कृत किया । परन्तु मैंने भी शीघ्रता की जिसके कारण मुझे यह दुःख और अपमान सहना पड़ा ।

शर्मिष्ठा—देवयानी, अब यदि आप कच का विचार त्याग चुकी हैं तो मेरी समझ से महाराज ययाति को अपना स्वामी बना लीजिए । उन्होंने आपत्ति के समय आपको कुपूँ से निकालकर आपकी रक्षा

की थी और सर्वप्रथम आपका कर-स्पर्श किया था और फिर कच का शाप भी.....(चुप हो जाती है ।)

देवयानी—शर्मिष्ठा, यहीं पर तो मेरी बुद्धि मेरा साथ नहीं देती—यही तो विचारने योग्य बात है । मेरे सम्मुख इस समय दो मार्ग हैं । या तो मैं आजन्म अविवाहित रहूँ अन्यथा महाराज ययाति को ही अपना पति स्वीकार करूँ । शर्मिष्ठा ! कच के चले जाने के पश्चात् यद्यपि मुझे कुछ दुःख अवश्य हुआ परन्तु मेरे सम्मुख कर्तव्याकर्तव्य का प्रश्न कभी उपस्थित नहीं हुआ था । परन्तु उस दिन अचानक महाराज ययाति का वन में मिलना और हाथ पकड़कर मुझे कुएँ से बाहर निकालना, मेरे लिए एक समस्या बन गया है ।

शर्मिष्ठा—देवयानी, आजन्म अविवाहित रहने पर आपके पिताजी को असह्य दुःख होगा और प्रत्येक व्यक्ति सर्वदा यही कहेगा कि कच के साथ विवाह न होने के कारण देवयानी आजन्म अविवाहित रहीं । यह कथन आपके उज्ज्वल चरित्र पर कालिमा का चिह्न हो सकता है । अतः मैं तो आपसे यही कहूँगी कि आप बीती बातों को भूल जायँ और महाराज ययाति को ही अपना स्वामी बनाकर सुखी हों ।

देवयानी—(एक लम्बी साँस लेकर) हा, दैव ने मुझे कैसी परिस्थिति में डाला है ।

शर्मिष्ठा—देवयानी, दुखी न हों । अब यदि आपकी कभी महाराज ययाति से भेंट हो तो आप उनसे प्रार्थना कीजिए कि वे आपको पत्नी-रूप से ग्रहण करें ।

देवयानी—नहीं बहन, मैं किसी से प्रार्थना न करूँगी । यदि उन्होंने भी कच की भाँति अस्वीकार कर दिया तब !

शर्मिष्ठा—बहन, निराश न हो । प्रत्येक व्यक्ति की प्रकृति तथा स्वभाव समान नहीं होता । मुझे आशा है कि वे आपकी प्रार्थना को अवश्य स्वीकार करेंगे । आप पुनः इस सम्बन्ध में विचार कर लें और अपने पिताजी से भी आज्ञा ले लें ।

देवयानी—मैं निश्चित रूप से कुछ नहीं कह सकती परन्तु इस बात पर फिर विचार करूँगी । अच्छा, तुम जाओ ।

शर्मिष्ठा—नहीं बहन, यह बात निश्चित ही हो जानी चाहिए ।

देवयानी—(मुस्कराकर) शर्मिष्ठा, तुम्हारा-उनका कोई पूर्वानुराग तो नहीं है ?

शर्मिष्ठा—अच्छा बहन, लो मैं जाती हूँ ।

देवयानी—अभी कैसे ? विवाह निश्चित कर लो तब । (हँसकर) अच्छा, जाओ ।

शर्मिष्ठा का प्रस्थान
पट-परिवर्तन

दृश्य ५

विपिन में एक रमणीय स्थान

(देवयानी और शर्मिष्ठा शिला-खण्डों पर बैठी हैं । सखियाँ अपने-अपने इच्छानुसार क्रीड़ा कर रही हैं ।)

शर्मिष्ठा—देवयानी, हम लोगों को यहाँ आये पर्याप्त समय हो चुका । अब घर चलिए, अन्यथा आचार्य शुक्र आपके लिए व्याकुल होने लगेंगे और हँदने निकलेंगे ।

देवयानी—शर्मिष्ठा, कुछ समय और ठहरो, फिर चलेंगी । देखो, यहाँ का दृश्य कितना रमणीय है । मेरा तो जी चाहता है कि यहीं रहूँ । शर्मिष्ठा, कुछ गाओ ।

शर्मिष्ठा—जो आज्ञा ।

गीत

मकरन्द भरा आनन में ।

दो फूल खिले कानन में ॥

जीवन में मधु मास समाया, मधु में हुआ प्रभात ।

फिर प्रभात में यौवन आया बीती शैशव रात ॥

मकरन्द भरा*** दो फूल ।

चिड़ियाँ चहक रहीं मदमाती सुरभित पवन-प्रवाह ।

सकल धरा में व्याप्त हो रहा उच्छ्वस तरल उछाह ॥

मकरन्द भरा***** दो फूल ।

सजनि, आगमन किसी रसिक का क्या होगा इस ओर ?

देखें किन कुसुमों से रमता चञ्चरीक चित्तचोर ॥

मकरन्द भरा आनन में ।

दो फूल खिले कानन में ॥

(आखेट करते हुए महाराज ययाति का प्रवेश)

सखियाँ—तुम कौन हो जी ? यहाँ क्यों आये ? क्या तुम देखते नहीं कि यहाँ गुरुपुत्री और राजकुमारी अपनी सखियों सहित क्रीड़ा कर रही हैं ?

ययाति—क्षमा कीजिए, आखेट करते हुए यहाँ चला आया । मैं महाराज नहुष का पुत्र ययाति हूँ । मुझे ज्ञात नहीं था कि आप लोग क्रीड़ा कर रही हैं, नहीं तो कदापि न आता । (देवयानी और शर्मिष्ठा से) देवियो, आप लोग कौन हैं ? इतनी सखियाँ आपके साथ हैं और सेवा में लगी हुई हैं ? परिधान और संस्कृति से भी आप किसी उच्च कुल को जान पड़ती हैं । क्या मैं यह जानने की धृष्टता कर सकता हूँ कि आपका शुभ नाम क्या है ?

देवयानी—राजन्, मैं मृतसञ्जीविनी विद्या जाननेवाले असुरगुरु महर्षि शुक्राचार्यजी की पुत्री हूँ और यह (शर्मिष्ठा की ओर इङ्गित करके) असुरराज वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा मेरी सखी और दासी है ।

(शर्मिष्ठा कुछ लज्जित होकर सिर झुका लेती है)

ययाति—(कौतूहल से) मुझे आश्चर्य हो रहा है कि यह राजकुमारी होकर आपकी दासी कैसे हो गई ! यदि आप अनुचित न समझे तो कृपा करके बतलाइए ।

देवयानी—राजन्, प्रत्येक कार्य ईश्वर की इच्छा के अनुकूल ही हुआ करता है । अतः आपको यही विचार कर दैव के कार्यों में आश्चर्य नहीं करना चाहिए । अपने-अपने शुभ और अशुभ कर्मानुसार प्राणिमात्र को सुख और दुःख प्राप्त होते हैं । भाग्यानुसार राजा रङ्क और रङ्क राजा हो सकता है । परन्तु मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि आप बहुत थक गये हैं । बैठ जाइए ।

ययाति—(बैठते हुए) कल्याणरूपिणि, मैं आखेट करते-करते इधर चला आया । मैं बहुत ही प्यासा हूँ और थक भी गया हूँ । क्या आप कृपा करके जल मँगवा सकती हैं ?

देवयानी—(शर्मिष्ठा से) जाओ, सखियों से कहकर जल और कुछ फल मँगवा लो ।

[शर्मिष्ठा सखियों से कहती है और सखियाँ फल और जल लाकर राजा ययाति के सम्मुख रख देती हैं ।]

ययाति—(फलादि खाकर और स्वस्थ होने के उपरान्त) शुभे, मैं आपका बहुत ही कृतज्ञ हूँ । अब मैं स्वस्थ हूँ । जाने की आज्ञा दीजिए ।

शर्मिष्ठा—राजन्, मैं आपसे कुछ निवेदन करना चाहती हूँ ।

ययाति—देवि, आज्ञा !

शर्मिष्ठा—मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ कि आप बहन देवयानी के स्वामी बनें ।

ययाति—कल्याणि, ये महर्षि शुक्राचार्य की कन्या हैं । यह क्या कह रही हो ? मैं क्षत्रिय हूँ । मेरे साथ यह विवाह कैसे हो सकता है !

शर्मिष्ठा—राजन्, सम्भवतः आप पहचान नहीं रहे हैं । अभी कुछ ही दिनों की बात है जब ये कुएँ में गिर पड़ी थीं और आप ही

ने हाथ पकड़कर इन्हें कुएँ के बाहर निकाला था। हाथ पकड़कर आजन्म निर्वाह करना चाहिए। आप मेरी प्रार्थना स्वीकार कीजिए। आप महाराज नहुष के पुत्र किसी ऋषि से न्यून नहीं।

ययाति—यह सब सत्य है परन्तु विवाह तो अनुचित ही है। ये महर्षि शुक्राचार्य की कन्या होने के कारण हमारी पूज्य हैं। ब्राह्मण का हृदय नवनीत की भाँति कोमल और पाषाण की भाँति कठोर भी होता है। वह क्रोधित होने पर शाप देकर त्रैलोक्य को भी भस्म कर देता है। मैं आपके कहने से देवी देवयानी को पत्नी रूप से नहीं ग्रहण कर सकता परन्तु यदि आचार्य शुक्रजी की यही आज्ञा होगी तो मैं अवश्य शिरोधार्य करूँगा।

शर्मिष्ठा—राजन्, धर्मानुसार जो व्यक्ति हाथ पकड़ता है वही पति होता है। यदि आप इस सम्बन्ध में आचार्य शुक्राचार्यजी की आज्ञा चाहते हैं तो सर्वथा उचित है। यही सही, आप आचार्यजी के पास चलिए। मुझे पूर्ण विश्वास है कि वे सहर्ष आज्ञा दे देंगे। तब तो आपको कुछ सोच-विचार न होगा ?

ययाति—नहीं, मैं कह चुका। उनकी आज्ञा का पालन अवश्य करूँगा।

शर्मिष्ठा—(देवयानी से) बहन देवयानी, आप राजर्षि के साथ पिताजी के पास चली जाएँ और इस सम्बन्ध में बात कर लीजिए।

देवयानी—(मुस्कराकर) हाँ, चली क्यों न जाऊँगी। आपकी आज्ञा का अवश्य पालन होगा। और भी कुछ आज्ञा है ? और, हाँ, शर्मिष्ठा ! अब तुम्हें और कुछ कहना तो शेष नहीं ? तुम अपनी इच्छा भी प्रकट करो। उसका भी प्रबन्ध कर दिया जाय।

शर्मिष्ठा—नहीं, बस-बस, ठीक है। आप राजर्षि के साथ पिताजी के पास चली जाएँ।

देवयानी—बहुत अच्छा, ...और कुछ ! मैं पिताजी के पास जाती हूँ । तुम भी सखियों के साथ शीघ्र चली आना । (राजा ययाति से) चलिए ।

दोनों का प्रस्थान
पट-परिवर्तन

दृश्य ६

शुक्राचार्य का निवास-स्थान

शुक्राचार्य—(कुछ चिन्तित) देवयानी विवाह-योग्य हो गई, परन्तु अभी तक कोई उपयुक्त पात्र न मिल सका जिसके साथ उसका विवाह करके मैं निश्चिन्त हो जाता । बुद्धि कार्य नहीं करती—क्या करें ? वह मेरो एकमात्र सन्तान है । बुढ़ापे की लकड़ी है, आँखों की ज्योति है । किसी अनुपयुक्त के हाथ में सौंप भी तो नहीं सकता । पुत्र और कन्या में कुछ भेद नहीं होता । माता-पिता दोनों का समान रीति से लालन-पालन एवं शिक्षादि का प्रबन्ध करते हैं परन्तु यही वह समय होता है जब कन्या अभिभावकों को भार प्रतीत होने लगती है, कष्टदायक सिद्ध होती है । कन्या किसको प्रदान करें—यह एक कठिन प्रश्न हो जाता है—चिन्ता का कारण होता है । देवयानी के योग्य कोई वर मेरे ध्यान में नहीं आता और दूसरे, बृहस्पति-पुत्र कच का शाप—“तुम्हें कोई ऋषिपुत्र वरण न करेगा”—भी मिथ्या नहीं हो सकता । इस शाप के कारण मुझे और भी अधिक चिन्ता रहती है । ब्राह्मण सर्वदा पूज्य होते हैं । शेष तीनों वर्ण उन्हें पूज्य मानते हैं और उनकी सेवा करने में अपना परम सौभाग्य समझते हैं । अब यदि मैं किसी क्षत्रिय अथवा अन्य वर्ण के व्यक्ति के साथ अपनी कन्या का विवाह करूँगा तो लोग क्या कहेंगे ?

यही कि असुरों के सम्पर्क में रहकर शुक्राचार्य अपने धर्म की मर्यादा को भी भूल गये और देखो, अपनी कन्या किसके साथ ब्याह दी। हा दैव ! ऐसी परिस्थिति में तू ही मेरी सहायता कर, मार्ग दिखा। (हाथ जोड़कर ऊपर देखते हुए) प्रभो ! मुझे तुम्हारा ही सहारा है। (कुछ चिन्तित होकर विचार करने लगते हैं ।)

(ययाति और देवयानी का प्रवेश)

[ययाति साष्टाङ्ग प्रणाम करके एक ओर खड़े हो जाते हैं ।]

शुक्राचार्य—(ययाति से) चिरञ्जीवि हो। (देवयानी से) पुत्री, आज तुम्हारे साथ की सब सखियाँ तथा शर्मिष्ठा कहाँ रह गई ?

देवयानी—पिताजी, मैं उनको शीघ्र घर आने के लिए कहकर (राजा ययाति की ओर सङ्केत करके) आपके साथ चली आई।

शुक्राचार्य—देवयानी, ये कौन हैं ? मैंने नहीं पहचाना।

देवयानी—पिताजी, ये जगत्प्रसिद्ध महाराज नहुष के पुत्र ययाति हैं। जब शर्मिष्ठा ने मुझे कूप में गिरा दिया था तब इन्हीं ने हाथ पकड़कर मुझे बाहर निकाला था। विपत्ति के समय यही मेरे सहायक हुए, अतः मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ कि आप.....(लज्जित होकर चुप हो जाती है)

शुक्राचार्य—देवयानी, तुम जो कुछ कहना चाहती हो निःसङ्कोच होकर कह डालो। तुम स्वयं जानती हो, मैं तुमसे कितना स्नेह करता हूँ और जब कभी किसी बात के लिए तुमने हठ किया, मैंने अवश्य पूर्ण किया।

देवयानी—पिताजी, यह सब सत्य है परन्तु फिर भी(चुप हो जाती है)

शुक्राचार्य—(समझते हुए) अच्छा, मैं समझा। सम्भवतः तुम्हारा अभि-
प्राय यह है कि जब ये एक बार तुम्हारा पाणिग्रहण कर चुके तो

अब इनके सिवा अन्य कौन तुम्हारा पति हो सकता है ? क्यों, है न यही बात ! (कुछ क्षण विचारकर) देवयानी, मेरी पुत्री, बोलो, मैं तुम्हारे इच्छानुसार ही विवाह करूँगा ।

देवयानी—जी हाँ । (सिर झुका लेती है)

शुक्राचार्य—पुत्री, मैं तुम्हारे इस कार्य से अप्रसन्न न होकर प्रसन्न ही हूँ । तुमने अपने उपयुक्त ही कार्य किया और समाज-धर्म का पालन भी । धर्मशास्त्रों का कथन है कि जो व्यक्ति किसी स्त्री का पाणिग्रहण करता है वही उसका पति होता है—स्वामी होता है । मैं प्रसन्नतापूर्वक तुम्हें इनको (ययाति की ओर संकेत करके) अर्पण कर दूँगा । (राजा ययाति से) राजन्, यह मेरी एकमात्र सन्तान है । मैंने सर्वदा इसे प्रसन्न तथा सुखी रखने की चेष्टा की । इसने धर्मशास्त्र के अनुसार आपको अपना पति मान लिया है तो अब मैं भी विधिपूर्वक अपना जामाता बनाकर सुखी हूँगा । अब मैं आपसे अनुरोध करता हूँ कि आप इसे सहर्ष ग्रहण करें ।

ययाति—आचार्य, क्षमा कीजिए । मुझे आपकी आज्ञा—चाहे जो कुछ भी हो—शिरोधार्य है । आपकी आज्ञा का उल्लंघन मैं कदापि नहीं कर सकता परन्तु सेवक और सेव्य में विवाह-सम्बन्ध होना उचित नहीं प्रतीत होता । यह तो बराबर मैं ही शोभा देता है । आप ब्राह्मण और मैं क्षत्रिय । भगवन् इस विवाह से धर्महानि होगी और मुझे पाप लगेगा

शुक्राचार्य—राजन्, तुम्हारा कथन अक्षरशः सत्य है परन्तु देवयानी ने तुम्हें अपनी इच्छा से वरण किया है अतः मैं भी तुम्हें यही आज्ञा देता हूँ कि देवयानी के साथ विवाह करके मुझे तथा उसे दोनों को कृतार्थ करो । पाप के सम्बन्ध में जो बात तुमने कही उसके लिए मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि इस विवाह से तुम्हें कुछ दोष न

लगेगा । मैं तुम्हारे पापों को मिटा दूँगा । राजन्, अब मैं
अनुरोध करता हूँ कि तुम इसके साथ विवाह करके प्रसन्न हो ।

ययाति—आचार्य, जो आज्ञा; परन्तु मैं आपसे यह निवेदन करूँगा
कि मुझे अपने राज्य से आये कई दिवस व्यतीत हो चुके हैं । यदि
आप विवाह-संस्कार के उपरान्त मुझे शीघ्र चले जाने की आज्ञा
दे दें तो बहुत बड़ी कृपा हो ।

शुक्राचार्य—अच्छा, मैं तुम्हें कल चले जाने की आज्ञा अवश्य दे दूँगा
द्वारपाल.....द्वारपाल

(द्वारपाल का प्रवेश)

द्वारपाल—आज्ञा, गुरुदेव ।

शुक्राचार्य—शीघ्र जाकर अपने महाराज से कहो कि जितनी वस्तुयें विवाह
में आवश्यक होती हैं, तत्काल भेज दें । मैं आज ही अपनी कन्य
का विवाह महाराज ययाति के साथ कर रहा हूँ ।

द्वारपाल—जो आज्ञा । (प्रस्थान)

(गान)

भाँवरें भर कमल की ऐ भ्रमर ! वह दिन आ गया है

सुखद है मधु मास प्यारा ।

समय है सब भाँति न्यारा

मृदु उजाला चन्द्रमा का गगन भर में छा गया है ।

कोकिला कल गान गाती ।

मञ्जरी लाजा गिराती ।

मृदुल मङ्गल प्रसर सारे भुवन मध्य समा गया है

सकल शोभा-धाम भू है ।

ऋतु महा मुद की प्रसू है ।

आज विपुल विनोद का जग में वितान तना गया है

भाँवरें भर कमल की.....

दृश्य ७

शुक्राचार्य का प्रकोष्ठ

देवयानी और ययाति

देवयानी—(ययाति को प्रणाम करती हुई) राजन्, अब तो पिताजी ने विधिपूर्वक विवाह कर दिया । मुझे स्वीकार करने में अब तो आपको कुछ सङ्कोच नहीं ?

ययाति—प्रिये, अब सङ्कोच का प्रश्न ही क्या ? परन्तु अब हम लोगों को आचार्यजी के पास चलकर चलने के लिए आज्ञा ले लेनी चाहिए क्योंकि मुझे अपने राज्य से आये कई दिवस व्यतीत हो चुके हैं । प्रजा व्याकुल और चिन्तित हो रही होगी ।

(दोनों शुक्राचार्य के पास चलने को उद्यत होते हैं)

देवयानी—(रुककर, शुक्राचार्य को आते देखकर) पिताजी तो यहीं आ रहे हैं ।

(शुक्राचार्य, वृषपर्वा तथा कुछ अन्य राज्ञसों का प्रवेश)

[शर्मिष्ठा तथा सब सखियाँ भी आती हैं ।]

ययाति—आचार्य, अब हम लोगों को जाने की आज्ञा दीजिए ।

शुक्राचार्य—राजन्, इच्छा तो यह थी कि हम लोगों के पास कुछ दिन रहते परन्तु राजा का कर्तव्य अपनी प्रजा का भली भाँति पालन करना होता है—उसे सुखी रखना होता है । कर्तव्य के सम्मुख प्रेम को झुकना पड़ता है अतः मैं यहाँ अधिक दिनों तक रोककर तुम्हें तुम्हारे कर्तव्य से विचलित से न करूँगा । राजन्, मैं आशीर्वाद देता हूँ कि धर्म में तुम्हारी अटल भक्ति हो । (देवयानी) पुत्री देवयानी, तुम तो जा रही हो ; मैं तुम्हारे बिना अकेला कैसे रहूँगा ?

देवयानी—(शुक्राचार्य से लिपटते हुए) पिताजी मुझे न भेजिए, मैं न जाऊँगी ।

शुक्राचार्य—देवयानी, यह क्या कह रही हो ! आज इस समय तुम्हारा हठ कदापि नहीं चल सकता । स्त्री का धर्म अपने पति की सेवा करना—उसकी आज्ञा का पालन करना ही होता है । स्त्री का सर्वस्व उसका पति ही होता है । पति ही धर्म, कर्म, मुक्ति तथा परमेश्वर है । राजा ययाति को सुखी रखने में ही तुम्हारा कल्याण होगा और मैं भी तभी प्रसन्न हूँगा जब यह सुनूँगा कि तुम अपने पतिव्रत धर्म का भली भाँति पालन कर रही हो ।

देवयानी—पिताजी, आशीर्वाद दीजिए कि मैं अपना कर्तव्य पालन करने में सफल हो सकूँ ।

शुक्राचार्य—ऐसा ही होगा । (ययाति से) राजन्, यही मेरी एकमात्र सन्तान है । मैंने माता की भाँति इसका पालन-पोषण और पिता की भाँति शिक्षा-दीक्षा का प्रयत्न किया । राजन्, सर्वदा से एकाकी होने के कारण तथा अधिक लाड़-प्यार के कारण यह कुछ हठी स्वभाव की हो गई है । इसके अपराधों को क्षमा करना और अपनी अनुचरी समझकर इससे प्रसन्न रहना ।

ययाति—आचार्य, मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मेरे साथ आपको पुत्री को किसी प्रकार का कष्ट न होगा ।

शुक्राचार्य—राजन्, दूसरी बात (शर्मिष्ठा की ओर सङ्केत करके) यह दानवराज वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा है । देवयानी के हठ के कारण इसे उसकी आजन्म दासी होना पड़ा परन्तु तुम कभी इसका भूलकर भी अपमान न करना । इसके साथ सदैव राजकुमारी की भाँति व्यवहार करना परन्तु राजन् यह स्मरण रहे कि इसके अधिकार मेरी पुत्री के समान नहीं हो सकते ।

देवयानी—पिताजी, यद्यपि शर्मिष्ठा को मैंने अपनी दासी बनाया परन्तु फिर भी उसके साथ कभी दासी के समान व्यवहार नहीं किया ।

मैं आपको, असुरराज वृषपर्वा को तथा स्वयं शर्मिष्ठा को भी इस बात का विश्वास दिलाती हूँ कि उसके साथ सदैव राजकुमारी की भाँति व्यवहार होगा और मेरे तथा इसके रहन-सहन में कोई विशेष अन्तर न होगा। यदि शर्मिष्ठा की इच्छा होगी तो वह मेरे साथ रहेगी अन्यथा वह दूसरे भवन में रहेगी और कुछ सखियाँ मेरे साथ तथा कुछ उसके साथ रहा करेंगी।

शुक्राचार्य—पुत्री, मैं तुमसे इसी प्रकार के उत्तर की आशा करता था।

(राजा ययाति, देवयानी, शर्मिष्ठा तथा सब सखियाँ चलने को उद्यत होती हैं तथा शुक्राचार्य को मस्तक नवाती हैं ।)

— सुखी हो ।

पट परिवर्तन

— —

दृश्य ८

(सुसज्जित वेश में राजा ययाति और देवयानी अपने राज्य में)

ययाति—देवयानी, इधर कई दिनों से तुम्हारी सखी शर्मिष्ठा नहीं दिखाई पड़ती। क्या कारण है ?

देवयानी—मैंने सुना है कि वह कुछ अस्वस्थ है। मैं भी उसके पास कई दिनों से न जा सकी। वह अधिकतर अपने भवन में ही रहती है।

ययाति—तो फिर तुम्हीं क्यों नहीं चली जातीं ? जाओ और उसका हाल देख आओ।

देवयानी—राजन्, मैं तो स्वयं ही जानेवाली थी परन्तु मैं देखती हूँ कि वह आजकल कुछ दुःखी और चिन्तित-सी रहती है। बहुत समझने की चेष्टा करने पर भी मैं कोई कारण नहीं समझ पाती। बुद्धि कार्य नहीं करती कि क्या करें। सम्भवतः वृषपर्वा के पास भेज देने पर वह स्वस्थ और प्रसन्न हो जाय।

ययाति—परन्तु वह तो जन्म भर के लिए तुम्हारी दासी है ।

देवयानी—यह सत्य है परन्तु जिस प्रकार मैंने अपनी इच्छा से उसे जन्म भर के लिए दासी बनाया उसी प्रकार उसे उस प्रतिज्ञा से—उस बन्धन से—मुक्त भी कर सकती हूँ । मैं स्वयं सोचती हूँ कि मैंने व्यर्थ हठ करके शर्मिष्ठा और वृषपर्वा से ऐसी प्रतिज्ञा करवाई परन्तु अब बीती हुई बात के लिए पश्चात्ताप करने में क्या लाभ । फिर भी मैं उसे जितना सुखी रख सकती हूँ, रखने की चेष्टा करती हूँ ।

ययाति—देवयानी, तुम मेरा कहना मानो और स्वयं उसके पास जाकर उसके दुःख का कारण जान लो । फिर उसे यथाशक्ति सुखी करने का प्रयत्न किया जायगा अन्यथा असुरराज वृषपर्वा के पास ही भेज दिया जायगा ।

देवयानी—यदि आप भी चले तो अति उत्तम हो ।

ययाति—मैं अवश्य चलता । परन्तु मेरे साथ होने पर सम्भव है वह मुझसे निःसङ्कोच वार्तालाप न कर सके । तुम चली जाओ ।

देवयानी—अच्छा, तो फिर मैं अकेली ही जाती हूँ ।

(देवयानी का प्रस्थान)

पट-परिवर्तन

दृश्य ९

शर्मिष्ठा अपने प्रासाद में

शर्मिष्ठा—

गीत

दुखद हिय की पीर सजनी ।

पल घड़ी में कुछ न अन्तर,

हो रहे हैं दिन युगान्तर ॥

बढ़ गई इस भाँति रजनी,
 द्रौपदी का चीर—सजनी ॥ दुखद हिय—
 निहित भाव सता रहा है,
 मन अहो ! उकता रहा है
 अति अधीर हुआ जगत मम,
 क्यों धरूँ मैं धीर सजनी ! दुखद हिय—
 शून्य सा संसार मेरा,
 दुख अथाह अपार मेरा
 प्रेम की मृदु वेदना है
 वेधती ज्यों तीर सजनी ॥ दुखद हिय—

मनुष्य अपनी जिह्वा को वश में रखने में असमर्थ होने पर कितना कटु फल भोगता है। मैंने देवयानी को कुछ कटु वाक्य कहे और परिणामस्वरूप मुझे आजन्म उसकी दासी होना पड़ा। वह सर्वदा मेरे सुखों का ध्यान रखती है और यहाँ भी मेरा आदर तथा सम्मान रानियों की भाँति ही होता है। लोग मुझे देवयानी से न्यून नहीं मानते। परन्तु क्या मैं वास्तव में सुखी हूँ ? कदापि नहीं। किसी वस्तु का अभाव मुझे प्रति क्षण प्रतीत हुआ करता है और एक अज्ञात वेदना दुखी किया करती है। तृप्ति प्राणी की तृषा केवल स्वच्छ, सुन्दर, निर्मल जल से भरा जलाशय देखकर ही शान्त नहीं हो सकती ; उसकी तृषा तो जल पीने से ही शान्त होगी। पति ही स्त्रियों का सर्वस्व होता है। यदि पति की सेवा न कर सकी तो इस नश्वर शरीर को जीवित और अलंकृत रखने से लाभ ही क्या ! (कुछ क्षण मौन होकर और विचारकर) परन्तु एक उपाय हो सकता है। जिस प्रकार देवयानी ने अपनी इच्छा से महाराज ययाति को अपना पति स्वीकार कर लिया है क्या उसी प्रकार मैं भी उन्हें वरण नहीं कर सकती ? यदि देवयानी को पत्नीरूप से ग्रहण करने में महाराज को कुछ सङ्कोच

नहीं हुआ तो फिर मेरे लिए क्यों होगा। अच्छा मैं महाराज से मिलने पर अपनी प्रार्थना निवेदन करूँगी। (कुछ विचार कर) परन्तु ऐसा करना देवयानी के साथ अन्याय होगा। वे मेरे सुख-दुःख का इतना ध्यान रखती हैं तो मेरा भी यह कर्तव्य नहीं कि उनके साथ विश्वासघात करूँ। अच्छा, जो कुछ होगा देखा जायगा, परन्तु मैं महाराज से कुछ भी न कहूँगी।

(देवयानी का प्रवेश)

देवयानी—शर्मिष्ठा ! अरे तुम अकेली क्या कर रही हो ? सब सखियाँ कहाँ गईं ?

शर्मिष्ठा—बैठिए। आज आपने कैसे कृपा की ? मैं तो इधर कई दिनों से आपसे मिल भी न सकी। सखियाँ कहीं इधर-उधर घूमती होंगी।

देवयानी—शर्मिष्ठा, मैं स्वयं तुमसे मिलना चाहती थी और मैंने यह भी सुना कि तुम कुछ अस्वस्थ रहती हो अतः देखने चली आई (कुछ क्षण ठहरकर) शर्मिष्ठा ! सच बताओ तुम आजकल इतनी उदासीन और चिन्तित क्यों रहा करती हो। मैं तुम्हारी चिन्ता को यथाशक्ति दूर करने का प्रयत्न करूँगी। शर्मिष्ठा, मेरी बहन, मैं सदैव तुम्हें अपनी बहन की ही भाँति मानती हूँ। क्या तुम मुझे भी अपने दुःख का कारण न बतलाओगी ?

शर्मिष्ठा—देवयानी, जब मैं विचारती हूँ कि पति के बिना स्त्री का जीवन व्यर्थ है—निःसार है—उस समय मुझे बहुत दुःख होता है।

देवयानी—बस, इतनी-सी बात के लिए तुम दुःख करती हो ! अच्छा, अब तुम प्रसन्न हो। मैं महाराज से कहकर शीघ्र ही किसी उपयुक्त पात्र के साथ तुम्हारा विवाह कर दूँगी।

शर्मिष्ठा—परन्तु.....

देवयानी—हाँ-हाँ कहो, क्या कहती हो ? (मुस्कराकर) क्या तुमने अपने लिए कोई वर ढूँढ़ लिया है ? यदि ऐसी बात हो तो फिर विवाह

होने में विलम्ब ही क्या ! शर्मिष्ठा चुप क्यों हो, नाम बताओ । तुम जिसके साथ चाहोगी उसी के साथ तुम्हारा विवाह कर दूँगी ।

शर्मिष्ठा—और, देवयानी, यदि मैं कहूँ कि मैं महाराज ययाति को ही पति बनाना चाहती हूँ तब.....

देवयानी—(कुछ विचार कर और सँभलकर) शर्मिष्ठा, कोई बात नहीं । तब मैं उन्हीं के साथ तुम्हारा विवाह करवा दूँगी ।

शर्मिष्ठा—यदि ऐसा है तो फिर मैं यही चाहती हूँ । परन्तु आप क्रोध तो न करेंगी, दुखी तो न होंगी ? क्या आचार्य शुक्र इसे बुरा न मानेंगे ?

देवयानी—बहन, इसमें क्रोध अथवा दुःख करने की क्या बात है । मेरे व्यवहार में तुम्हारे अथवा महाराज के साथ किञ्चित् मात्र भी अन्तर न होगा । मैं तुम्हें जिस प्रकार अभी तक सखी और बहन की भाँति मानती रही हूँ, सर्वदा मानूँगी । परन्तु रही पिताजी की बात । सो वे भी कदाचित् बुरा न मानेंगे, यदि कभी ऐसा अवसर पड़ा तो मैं उन्हें समझा लूँगी—शान्त कर लूँगी ।

शर्मिष्ठा—(देवयानी के पैरों पर गिरकर) देवयानी, आप यथार्थ में देवी हैं । आपका त्याग धन्य है । सामान्यतया स्त्रियाँ अपने सौतिया डाह के लिए प्रसिद्ध रहती हैं । सम्भवतः कोई स्त्री ऐसी न होगी जो अपनी सपत्नी से ईर्ष्या न करती हो और स्वयं अपने इच्छानुसार प्रसन्नतापूर्वक विवाह करने की अनुमति दे देती हो ।

देवयानी—शर्मिष्ठा, तुम प्रसन्न हो । मैं अभी महाराज को बुलाकर उनसे प्रार्थना करूँगी कि वे तुम्हें पत्नीरूप से ग्रहण करें । आज सब सखियाँ कहाँ गईं ?

(कुछ सखियों का प्रवेश)

१ सखी—आज्ञा, महारानी ।

देवयानी—देखो तुम अभी महाराज के पास चली जाओ और कहो कि मेरी सखी शर्मिष्ठा का दुःख दूर करने का उपाय बहुत ही सरल है ।

वह यह कि वे कुछ क्षणों के लिए यहाँ आने की कृपा करें हम दोनों महाराज के दर्शन करना चाहती हैं।

सखी का प्रस्थान

[कुछ क्षणोपरान्त राजा ययाति का आगमन। देवयानी और शर्मिष्ठा दोनों स्वागतार्थ उठती हैं।]

देवयानी—राजन्, मैं यह प्रार्थना करती हूँ कि जिस प्रकार आपने मुझे अपनी पत्नी स्वीकार करके सनाथ किया उसी प्रकार मेरी सखी शर्मिष्ठा को भी अपनी भार्या बना लीजिए।

ययाति—देवयानी, यह क्या ? क्या इसी लिए तुमने मुझे बुलाया है ? क्या तुम शर्मिष्ठा को अपनी सपत्नी बनाने के लिए कह रही हो ? क्या तुम्हें इससे क्लेश न होगा ? चलते समय तुम्हारे पिताजी ने जो शब्द कहे थे उन्हें क्या तुम भूल गईं ?

देवयानी—राजन्, मुझे किञ्चित् मात्र भी क्लेश न होगा प्रत्युत ऐसा हो जाने पर अपनी सखी को सुखी देखने से प्रसन्नता ही होगी। पिताजी को मैं समझा दूँगी और वे भी आप पर क्रोध न करेंगे।

ययाति—देवयानी, हठ न करो। मैं स्वयं विवाह करना नहीं चाहता।

देवयानी—मैं जानती हूँ कि आपका मुझ पर असीम प्रेम है, इसी कारण आप विवाह गहीं करना चाहते। राजन्, शर्मिष्ठा असुरराज वृषपर्वा की पुत्री, सुन्दरी, सुशील, सच्चरित्र तथा सर्वगुणसम्पन्न है। वह आपके साथ विवाह करने के अयोग्य नहीं। (अंचल पसारकर) राजन्, मैं आपसे उसके प्राणों की भिक्षा माँगती हूँ। यदि आप इसे स्वीकार न करेंगे तो वह इसी प्रकार प्राण त्याग देगी।

ययाति—देवयानी, स्वयं विवाह करने पर लोग क्या कहेंगे ? क्या यह धर्म-विरुद्ध न होगा ?

देवयानी—कदापि नहीं। धर्मशास्त्रों का मत है कि क्षत्रिय किसी क्षत्रिय-कन्या के साथ—यदि दोनों सहमत हों—तो गान्धर्व विवाह कर सकता है।

याति—अच्छा, यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो जो चाहे वह करो । मैं तुम्हारी प्रसन्नता के लिए विवाह भी करने को प्रस्तुत हूँ ।

देवयानी—(मुस्कराकर) आप यह विवाह केवल मेरी प्रसन्नता के लिए कर रहे हैं और मेरी सखी शर्मिष्ठा की प्रसन्नता के लिए नहीं । (शर्मिष्ठा से) बहन, इधर आओ ।

(शर्मिष्ठा पास आती है और देवयानी उसका हाथ राजा याति के हाथ में देकर)

राजन्, आज से आप ही इसके भी पति हुए । मैं अधिक क्या कहूँ, आप स्वयं बुद्धिमान हैं । अपना कर्तव्य स्वयं निर्वाह करेंगे ।

ते—यह तो बहुत कठिन प्रतिज्ञा है । मैं अपने कर्तव्य को स्वयं निवाह करूँगा ।

वयानी—(शर्मिष्ठा से) बहन, देखो मैंने तुम्हारी इच्छित वस्तु तुम्हें दिला दी । तुम्हें मेरी कृतज्ञ होना चाहिए । मुझे पुरस्कार मिलना चाहिए । हाँ, अब तुम मुझसे भगड़ा तो नहीं किया करोगी ?

शर्मिष्ठा—(लजित होती हुई) बहन, उन पुरानी बातों को भूल जाओ । यद्यपि मैं एक बार पहले भी आपसे क्षमा-याचना कर चुकी हूँ परन्तु उस समय वह केवल शिष्टाचार था । अब यथार्थ मैं मुझे अपने वचनों पर पश्चात्ताप हो रहा है । मैं जन्म-जन्मान्तर तक आपकी कृतज्ञ रहूँगी । आपकी उदारता धन्य है—सराहनीय है । यदि मैं आपके स्थान पर होती तो ऐसा कदापि न कर सकती ।

देवयानी—शर्मिष्ठा, उन बीती बातों को भूलकर भी ध्यान में न लाओ । अब हम लोगों को इस प्रकार रहना चाहिए कि कोई यह न जान सके कि हम सपत्नियाँ हैं । परन्तु स्मरण रहे कि अब तुम्हारा स्थान मेरे समान है ।

शर्मिष्ठा—मैं सदैव आपके आज्ञानुसार ही कार्य करूँगी और आपको बड़ी बहन की भाँति ही मानूँगी ।

देवयानी—(राजा से) राजन्, मैं ईश्वर से प्रार्थना करती हूँ कि वह
दंपति को सुखी रखे ।

ययाति—और मैं भी ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह आप दोनों
प्रसन्न रखे ।

(नेपथ्य से)

हम सब मोद मनाये'

आज हिल-मिलकर गाये' ।

आई शान्ति-शरद हितकारी गई' विपत्ति-घटाये' ।

सफल हुए सब कार्य हमारे मिटी सकल विपदाये' ॥

हम सब आज हिल-मिल....

हृदय-कमल फूले सुखदायक अलि गूँजे मँडराये ।

सकल धरा आनन्द-युक्त हो भुवन स्वर्ग बन जाये ॥

हम सब आज हिल-मिल.....

प्राणी सभी सुखी हों जग में घन प्रमोद के छाये' ।

बने' सकल मृदु मानव-मानस मङ्गल मुदित मनाये' ॥

हम सब मोद मनाये',

आज हिल-मिलकर गाये' ।

पटाक्षेप

